खारवेल

शोध-संदर्भ: श्री सदानन्द अग्रवाल

प्रस्तुति: श्री श्रीनिवास उद्गाता

श्री दिगम्बर जैन समाज, कटक
महताबरोड, कटक-७५३०१२

खारवेळ

शोध-संदर्भ - श्री सदानंद अग्रवाल

प्रस्तुति - श्री श्रीनिवास उद्‌गाता

आवरण -श्री असित मुखार्जी

अलंकरण -श्री सौरींद्रकुमार उद्‌गाता

प्रथम मुद्रण - जनवरी, 1993

मुद्रक - श्रीजगन्नाथ लामिनेटर आण्ड अपूसेट प्रिण्टर्

मूल्य: रू.८० (अस्सी रूपये)

प्रकाशक - श्री दिगम्बर जैन समाज, कटक

KHARAVELA

Research and base - Sri Sadananda Agrawal

Presentation - Sri Srinivas Udgata

Cover - Sri Asit Mukharjee

Inner designs - Sri Sourindra Kumar Udgata

First Edition - January 1993

Printer - SriJagannath Laminator & Offset Printer
Badambadi, Cuttack - 753012.

Distributor - Arya Prakasan, Link Road, Cuttack.

Price-Rs 80/-

Published by-Sri Digambar Jain Samaj, Cuttack.

आवरण चित्र:

आकाशचारी विद्याधर (रानी गुम्फा)
हाथीगुम्फा अभिलेख का आंशिक

इतिहासवेत्ता, राजनीतिविशारद
नवउत्कल के निर्माता
उत्कल - केशरी
स्व. डॉ. हरेकृष्ण महताब के
चरण - कमलों में सादर समर्पित।

—सदानंद—

प्रस्तावना

भारतवर्ष के इतिहास में कलिंग का स्थान अत्यंत ऊंचा और महत्वपूर्ण है। पुरातत्त्व, धर्म, दर्शन, स्थापत्य, संस्कृति, साहित्य, ललित-कलाएं आदि सभी विषयों के संदर्भ में विचार के समय कलिंग की उल्लेखनीय भूमिका को नकारना कदाचित संभव नहीं है। प्राचीन कलिंग के इतिहास में जैनधर्मी महाराजा खारवेळ का शासन काल भारतीय इतिहास में भी एक स्वर्णिम काल है। आधुनिक ओड़िशा की राजधानी भुवनेश्वर के समीपवर्ती उदयगिरि -खण्डगिरि में उत्कीर्णित शिलालेख और शिलांकन, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टिकोण से अत्यंत तात्पर्यपूर्ण है।

यह शिलालेख "हातीगुंम्फा अभिलेख" के नामसे प्रख्यात है। अज्ञात, अगोचर था, जिसे सबसे पहले लिपिविद जेमस् प्रिन्सेप ने ई. 1837 में देखा, उसका पाठोद्धार किया, जिससे मानों कलिंग इतिहास का अवरुद्ध द्वार ही खुल गया। उस रुद्ध द्वार के उन्मुक्त होते ही अनेक विद्वानों ने अनथक परिश्रम से इसका पाठोद्धार और व्याख्याएं प्रस्तुत कर ग्रथों में, ऐतिहासिक शोध संदर्भों के रूप में भिन्न भिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित कर सुचिंतित तथा तर्कपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डालने की कोशिश की, पर वे ग्रंथ तथा पत्रिकाएं साधारण पाठकों के लिए दुर्लभ हैं।

खारवेळ और जैन धर्म के संबंध में पाठकों के लिए एक सरल तथा सुखपाठ्य ग्रंथ की रचना भी आवश्यक है इसी विचार से प्रख्यात कवि श्री श्रीनिवास उद्‌गाता ने मुझे प्रेरित किया, क्यों कि Orissan Palaeography ग्रंथ की रचना के लिये मैं तब दीर्घ काल से खारवेळ के अभिलेखों का अध्ययन कर रहा था। उन्हीं की प्रेरणा से मेरा " सोनपुर इतिहास" दो खण्डों में प्रकाशित हो चुका था।

जब ओडिआ में खारवेळ पर शोध-संदर्भ लगभग तैयार हो गया और उसकी संपुष्टि के लिए आवश्यक चित्र, वर्णलिपि, अभिलेख आदि के चित्र बन गये तब कटक में श्री शांति कुमार जी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे जैनधर्मी हैं, सदाशय, कला-संस्कृति के मर्मज्ञ विद्वान हैं तथा श्री बाँगाल, बिहार, ओडिशा दिगंबर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, कलकत्ता के प्रमुख कार्यकर्ताओं में से एक हैं। उन्होंने हिंदी में ही खारवेळ पर ग्रंथ प्रकाशित करने के सुझाव दिये। पर मेरे लिये हिंदी में इसकी रचना कर पाना आसान नहीं था। हर रचनात्मकता को वृहत्तम मंच मिले, श्री उद्‌गाता जी भी यही चाहते हैं। विविधता के रहते भारत एक है। इतिहास, संस्कृति, कला-मानस, सब कुछ आत्मीय स्तर पर एक ही हैं। धर्म-मत-निर्विशेष से सभी भारतीय एक-दूसरे को जाने पहचानें। यह सद्‌भावना अक्षर-भारती के आशीर्वाद ही से जागरित हो सकती है, और हर भारतीय भाषाओं के लिए हिंदी ही वह विस्तृत विचार मंच है जिसके जरिये भारत में भावनात्मक एकात्मता की प्रतिष्ठा हो पाएगी। अत: वे इस ग्रंथ को हिंदी में प्रस्तुत कर देने को सहर्ष तत्काल राजी हो गये, मुझे उनकी उस सदयता के कारण अपार संतोष भी प्राप्त हुआ और अब यह ग्रंथ आपके सामने है।

मुझे श्री उद्‌गाताजी नित्य प्रेरित करते रहते हैं। अपनी सारस्वत साधना के क्षेत्र में मुझे जो भी सफलता मिली है वह उन्हीं से मिले प्रोत्साहन और मार्गदर्शन का फल है। चकित तो तब होना पड़ता है जब वे स्वयं पुस्तक को सुंदर बनाने के अभिप्राय से अलंकरण तक की ओर अनुराग से ध्यान देते हैं और मुझसे भी अधिक परिश्रम किया करते हैं।

इस ग्रंथ में संयोजित सभी लिपि-चित्रों का चित्रण मुझसे हुआ है। कहीं भी खारवेळकालीन अभिलेखों के स्पष्ट फोटोचित्र प्राप्त नहीं होते। अब शिलालेख के बहुलांश भी नष्ट हो चुके हैं। अत: एक

प्रमादशून्य पाठ-प्रस्तुति कदापि संभव नहीं है। फिरभी पूर्व प्रकाशित पाठ, सरजमीन पर हाथीगुम्फा अभिलेख का अध्ययन से हमसे जो कुछ भी बन पाया उसी के आधार पर मैंने व्याख्या करने का विनम्र प्रयास किया है।

इस ग्रंथ के प्रकाशन का सारा श्रेय श्री शांतिकुमार जी को जाता है। उनका ध्येयनिष्ठ अनुराग, औदार्य तथा प्रोफेसर श्री जगदीश कुमार गुप्ता, श्री विनोद कुमार टिबेरवाल जी तथा श्री राजेन्द्र कुमार अग्रवाल जी के सदाशय सहयोग, आत्मीय-आग्रहसे परिपूर्ण व्यवस्थाओं के कारण इस कार्य को सफलता प्राप्त हुई है। मैं इन सब के प्रति हृदय से आभारी हूं।

मेरे हिताकांक्षी पण्डित श्री अर्जुन होताजी के आशीर्वचनों से मुझे बल मिलता है। मुझे इस ग्रंथ को प्रस्तुत करने में डॉ.श्रीमती ज्योत्स्नामयी महापात्र, ऐतिहासिक श्री विघ्नराज पटेल, प्रबुद्ध मर्मज्ञ अईठु साहु, इतिहासकार प्रो.यज्ञकुमार साहु, प्रो.करुणासागर बेहेरा, प्रो.राजकिशोर मिश्र, ओड़िशा म्युजियम के अधिक्षक डॉ. हरीशचंद्र दास, प्रो. नारायण पृष्टि. प्रो. युगल किशोर बहिदार, श्री गौरीशंकर पाणिग्राही, डॉ.रामनारायण नंद, जगदानंद कुरिया और भैया शंकर प्रसाद, भाभी सुमित्रा देवी आदि विद्वानों का अकुण्ठ सहयोग तथा सत् परामर्श प्राप्त है। उनके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

प्रख्यात चित्र शिल्पी, परम सुहृद विद्वान श्री असित मुखार्जी ने अपने कलात्मक आवरण-चित्र से इस ग्रंथ को अलंकृत किया है। एक विशाल हृदय और अप्रतिम प्रतिभा के धनी श्री मुखार्जी के प्रति आभार व्यक्त करने की अभिव्यक्ति-समर्थता मुझमें नहीं है। आदरणीय श्री सौरींद्रकुमार उद्गाता ने इस ग्रंथ में संयोजित चित्र बनाये हैं और मेरे प्रिय भगिनी-पुत्र श्री सुनील कुमार केड़िया ने पाण्डुलिपि प्रस्तुति में सहायता की है। इन दोनों के लिये मेरी अशेष शुभ कामनाएं।

प्रसन्नता है कि भगवान महावीर की अनंत कृपा से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है। इस के अध्ययन से सुधी पाठक वर्ग लाभान्वित होते हैं तो मुझे भी अपार आनंद मिलेगा। पूरा प्रयत्न करने पर भी त्रुटियाँ रह जाना संभव है। अत: सुझावें और संशोधनों का हम स्वागत करेंगे।

विनीत,
सदानंद अग्रवाल।

कार्तिक पूर्णिमा, 1992
मेण्डा, जि.बलांगिर

आत्मकथन

स्वप्न साकार हुआ, इस अनुभूति के आते ही जो अपार आनन्द मिलता है वह अनिर्वचनीय है। कुछ वैसी ही दिव्य हर्षानुभूति हो रही है हमें, 'खारवेळ' ग्रन्थ के प्रकाशन के अवसर पर।

स्व. पूज्य पिताजी श्री निहाल चन्द जी अग्रवाल जैन थे। आप श्री खण्डगिरि, श्री उदयगिरि सिद्धक्षेत्र तथा श्री कटक दिगंबर जैन मंदिर के क्षेत्र—मंन्त्री थे। दीर्घकाल तक आपने क्षेत्र की सेवा की। अपनी शारीरिक असमर्थता के कारण प्रत्यक्ष दायित्व से मुक्त होने की इच्छा से श्री बंगाल, बिहार, ओडिशा दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के सामने अपने विचार रखे तो कमिटीने मेरा नाम प्रस्तावित करदिया। जब क्षेत्र के साथ संपर्क-सूत्र सुदृढ हुआ, जिज्ञासा बढ़ी तो चक्रवर्ती कलिंग सम्राट् खारवेळ के बारे में भी अवगत होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके शासन काल में कलिंग जैन धर्म की उर्वर भूमि थी। उन्होने मगध विजय कर कालिंगजिन की प्रतिमा वापस लाकर कलिंग में उसकी प्रतिष्ठा करवायी। आपके दिग्विजय राज्य विस्तार के लिए नहीं था; वरन धार्मिक संरक्षण की भावना के प्रति समर्पित था। महारानी भी वैसी ही थीं जो संसारिक भोग विलास के बदले आत्म-कल्याण के प्रति अधिक अनुरक्त थीं। सम्राट् और महारानी दोनोंने दिगंबरी दीक्षा लेली। साधु और साध्वियों को एक साथ तपसाधना में असुबिधा के बारे में मुनिराज से ज्ञात होकर महाराजने तत्काल राणीगुम्फा-खनन की योजना बनायी ...., आदि आदि गाथाएं सुनकर मन को बड़ी शांति मिली थी। और तब से अब तक मन में यह इच्छा बलवती होती गयी, मन में निरंतर यह विचार अमडता रहा कि कोई इतिहासवेत्ता महानुभव

मिलें और जैन धर्म तथा "खारवेळ" पर ग्रंथ की रचना करदें तो वह शांति प्रशांत हो जाएगी। तब संयोग से भाई जगदीशप्रसाद जी को श्री सदानंदजी अग्रवाल के बारे में ज्ञात हुआ। तब तक श्री अग्रवाल का 'सोनपुर इतिहास' दो खण्डों में प्रकाशित हो चुका था। जिस से हमें उनकी विद्वता का परिचय भी मिल चुका था। पत्राचार चला। भाई विनोदकुमार जी टिबरेवालजी और श्री जगदीशप्रसाद जी श्री अग्रवाल जी से वार्त्तालाप की व्यवस्था की। हमारी योजना के बारे में जानकर और हमारे अनुरोध से श्री अग्रवाल जी प्रसन्न हुए तथा तैयार होगये। पर उन्होंने विनम्रता से बताया कि हिन्दी में लिखपाना उनके लिए कठिन होगा। आपही ने हमें ओडिआ और हिन्दी के ख्याति प्राप्त कवि- कथाकार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊके द्वारा हिन्दी दिवस के अवसर पर भारत भारती 'सौहार्द सम्मान, से अलंकृत मर्मज्ञ विद्वन श्री श्रीनिवास जी उद्गाता से अनुरोध करने का आश्वसन दिया।

सुखद आश्चर्य की बात तो यह है कि ये दोनों सज्जन अपने अपने कार्यों में लगगये। इस कार्य को प्रमुखता देकर अथक परिश्रम से समय पर पूरा भी करदिया। आरंभ ही से दोनों विद्वानों ने स्पष्ट कर दिया है कि कोई परिश्रमिक लेंगे नहीं। यह बात दोनों की बड़ी उदारता का परिचय देती है, और उनके हृदय की विशालता अपने आप अधिक आभासित हो जाती है। केवल यही नहीं ग्रंथ की मुद्रण व्यवस्था, आवरण चित्र, प्रूफ आदि के संशोधन आदि आदि प्रकाशन संबंधी आवश्यकताओं को सुव्यवस्थित करने के लिए दोनें ने कटक ही में 'डेरा डाल दिया; यह हमारे लिए कतई संभव नहीं हो पाता। वे हमारे अतिथि थे। भाई राजेन्द्र प्रसाद ने उनके कटकप्रवास के समय आवश्यकता के प्रति ध्यान दिया और। पलभर के लिए भी साथ नहीं छोड़ा।

पूज्य पिताजी व्यापार के क्षेत्र में एक सम्मानित व्यक्ति थे। उनके पास स्व. द्वारकाप्रसाद जी क्याल का सदा उठना बैठना था। वे स्वर्गीय पिताजी से एक धर्मशाला बनवा देने का आग्रह किया करते थे। यह बात पूज्य पिताजी के मानस में भी समागयी। श्री दिगम्बर जैन मन्दिर से लग कर ही मंदिर की जमीन थी। इसपर श्री दिगम्बर जैन भवन बनवाने का काम आरम्भ हो गया। निचेका हिस्सा बनगया पर उससे पिताजी को संतोष नहीं हुआ। वे चाहते थे कि भवन की एक और मंजिल भी बनजाए। तब वे अस्वस्थ रहने लगे। तब उनसे यह पूछा भी गया था और वे अपनी उस एक ही इच्छा को प्रकाशित करते रहे। उस समय स्व. पूज्य पुसराज जी, पूज्य फतेचन्द जी एवं स्व पूज्य सागरमलजी थे। पिताजी की इच्छा थी और निर्माण के लिए इन सब महानुभवों की सम्मति थी। पूजनीया स्व. माताजी श्रीमती लक्ष्मी देवी की भी पति अनुगामिनी इच्छा थी कि भवन की ऊपरी मंजिल बन जाए। बताती रहीं कि उनकी इच्छा से मेरी इच्छा कहीं अलग हो सकती है?

पूज्य पिताजी का दिनांक १४ जुलाई १९७० को स्वर्गवास हुआ और उसके ढाई महीने के बाद पूजनीया माताजी भी दिनांक २ अक्टूबर १९७० को स्वर्ग सिधारगयीं। उनका आशीर्वाद हमारे लिए निरंतर है। उन्हें हमारे इस कार्य के लिए संतोष होगा। पर उनके रहते बाकी कार्यों की भाँति यह भी हो जाता तो हमें और भी अधिक आनन्द मिला होता।

अब इस ग्रंथ के प्रकाशन के बारे में — श्री दिगम्बर जैन समाज, कटक के जो भी भाई बहन एक समारोह में थे, उनके सामने इस ग्रंथ के प्रकाशन की बात रखीगयी तो सब पुलकित हो उठे। सबने चाहा कि यह कार्य सुन्दर ढंग से शीघ्र ही हो। यही उन सब की इच्छा है। जो सद्‌विचार सब के मन में वर्षों से था उसे ही आज सार्थकता प्राप्त हुई है, इस ग्रंथ के

प्रकाशन से। इस ग्रंथ का प्रकाशन दिगम्बर जैन समाज, कटक की ओर से हुआ है। इसके लिए सब से हमें आंतरिक सहयोग प्राप्त हुआ है। हम उनका आभार मानते हैं।

अंत में श्री उद्गाताजी, श्री सदानन्दजी, प्रख्यात चित्र शिल्पी श्री असित मुखार्जी, श्री गिरीशचन्द्र मिश्र तथा इनकी धर्मपत्नी दीप्तिप्रभा मिश्र जी के प्रति भी हम हृदय से आभार मानते हैं। इनके सहयोग के विना इतने कम समय में यह कार्य कदापि संभव नहीं हो पाता।

हमें विश्वास है कि इस ग्रंथ के अध्ययन से अनुरागी प्रबुद्ध पाठकों को लाभ ही होगा।

विनीत
शांति कुमार अग्रवाल जैन

२६ जनवरी १९९३
महताब राड, कटक
७५३०१२

सूची

☆

चित्रसूची

८. आभूषण

[क] हाथ और बाजु के

[ख] कर्णभूषण

[ग] हार

[घ] कटि मेखला और पद कंकण

९. केश सज्जा

[क] नारियों के

[ख] पुरुषों के

१०. नृत्य दृश्य-राणीगुम्फा निचले खण्ड-दक्षिण प्रकोष्ठ

११. नृत्य दृश्य- ततोव गुम्फा-२

१२. सर्पगुम्फा अभिलेख

१३. हाथीगुम्फा अभिलेख- १६वीं पंक्ति का एक अश

१४. राणीगुम्फा रंगमंच- सम्मुख भाग परिकल्पित

१५. अनंतगुम्फा का सर्प लाछन

१६. अनंतगुम्फा का जैन सांकेतिक चित्र

१७. अनंतगुम्फा के बरामदो में स्थित स्तंभ

१८. लिपिपत्र [अशोक और खारवेळ कालीन वर्णमाला]

१९. लिपिपत्र [मात्राओं के विकास.- हाथी गुम्फा]

☆

भूमिका

प्राचीन भारत के इतिहास और सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रख्यात चेदि राजवंश की प्रतिष्ठा कलिङ्ग में महामेघवाहन वंश के नाम से ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी तक हो चुकी थी। बहुधा जैन धर्म के प्रधान पृष्ठपोषक होने के कारण इस वंश के राजाओं का यश जैन साहित्य में विशेष रूपसे कीर्तित हुआ है। महाभारत, बौद्ध चेतीय जातक तथा अन्य पुराणों मे भी इस वंश का विवरणी पाया जाता है। कलिङ्ग में खारवेळ इस राजवंश के सर्वश्रेष्ठ शासक माने जाते हैं। यह भी तात्पर्यपूर्ण है कि भारतवर्ष में वे ही महाराजा-पद-विभूषित सर्व प्रथम सम्राट हैं और उनकी प्रथम महिषी के मंचपुरी-गुम्फा-अभिलेख में उन्हें चक्रवर्ती के रूप में अभिहित किया गया है। दस वर्ष के शासन काल में खारवेळ ने जो सामरिक सफलता पायी थी उसके समकक्ष दृष्टांत भारत के इतिहास में दृष्टिगोचर नहीं होता। उनके शासन काल में कलिङ्ग समग्र भारतवर्ष में अद्वितीय और अजेय शक्ति के रूप में विवेचित हुआ तथा अपने राजनैतिक प्रभाव को हिमालय से कुमारिका, पूर्व सागर से पश्चिय पयोधि तक व्याप्त कर सका था। शासक के रूप में उनकी मानविकता, कला और संस्कृति के प्रति प्रगाढ अनुराग, उदार धर्म-नीति और अध्यात्मिकता के कारण इतिहास में उन्हें विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है।

यह निश्चित है कि प्राचीन काल में कलिङ्ग उत्तर में गंगा से दक्षिण में गोदावरी तक सुविस्तृत था। ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दी में मगध सम्राट महापद्म नंद की विजय के फलस्वरूप समग्र कलिङ्ग, नंद साम्राज्य में सम्मिलित हो चुका था। परंतु महापद्म नंद के पश्चात गंगारिडाइ (कलिङ्ग का उत्तरांश) के अलावा अन्य सभी क्षेत्र नंद साम्राज्य की अधीनता से मुक्त हो गये। ग्रीक इतिहासकारों के

विवरण से स्पष्ट रूपसे ज्ञात होता है कि अंतिम नंद राजा औग्रसैन्य (धननन्द) के समय केवल मात्र गंगारिड़ाइ ही नंद साम्राज्ये के अंतर्गत था। जब चंद्रगुप्त मौर्य ने अंतिम नंद राजा के विरूद्ध युद्ध की घोषणा की तब राष्ट्र विप्लव का लाभ उठाते हुए, गंगारिडाइ कलिङ्ग भी नंद साम्राज्य से अलग होगया। चंद्रगुप्त मौर्य के ईसा पूर्व 322 में मगध सिंहासनारोहण के समय समग्र कलिङ्ग एकत्र संगठित होकर एक शक्तिशाली राज्य बन चुका था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि चंद्रगुप्त के उत्तर-पश्चिम में हिंदूकुश पर्वत से लेकर दक्षिण में आधुनिक महीशूर (मैसूर) तक अपने साम्राज्य का विस्तार कर लेने के बावजूद उन्होंने कलिङ्ग विजय के लिये कोई प्रयास किया नहीं था। ई.पू. 261 में सम्राट अशोक के कलिङ्ग-विजय के परिणाम स्वरूप आगंगा-गोदावरी विस्तृत सागर-तटवर्ती क्षेत्र मौर्य साम्राज्य में सम्मिलित हुए। कलिङ्ग युद्ध की भयानक परिणति के कारण सम्राट अशोक ने गिरि-अरण्य-संकुल पश्चिमांचल का अधिकार करने की इच्छा नहीं की। मौर्य वंश के पतन के पश्चात् मगध पर सुंग और काण्ववंशी राजाओं ने शासन किया। नंद सम्राज्य के विलोपन के समय जिस भाँति कलिङ्ग को पराधीनता से मुक्त होने का साहस प्राप्त हुआ था, उसी भांति मौर्य शासन पतनोन्मुख काल में कलिङ्ग शौर्य प्रदर्शन में असफल रहा। ई.पू.प्रथम शताब्दी में सातवाहन वंशी राजा सिमुक ने सुंग-काण्व वंशी शासन का अंत कर विदिशा और उज्जयिनी क्षेत्र में एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। लगभग उसी समय चेदि वंश ने भी कलिङ्ग में क्षमतासीन होकर एक स्वाधीन और शक्तिशाली राज्य की प्रतिष्ठा की थी। दो सदियों की सुदीर्घ अवधि की पराधीनता और प्रभावहीनता के पश्चात् कलिङ्ग ने फिरसे जाग्रत होकर भारतीय राजनीति और संस्कृति के लिये अपनी महत्वपूर्ण भूमिका इतिहास में निभायी।

ऋगुवेद के वर्णन के अनुसार चेदि राजवंश क्षत्रिय कुलांतर्गत थे। महाभारत में भी इस वंश के सुयश गाथा लिपिबद्ध है। निःसंदेह

यह कहा जा सकता है कि चेदि राजवंश भारत में अति प्राचीन काल से ही प्रतिष्ठित था। जैन हरिवंश के उल्लेख से यह स्पष्ट प्रतिप्रादित होता है कि विंध्याचल के समीपवर्ती क्षेत्र में अभिचंद्र ने चेदि राष्ट्र की स्थापना की थी और शुक्तिमती नदी के तट पर उनकी राजधानी थी जिसकी शुक्तिमतीपुर के नाम से ख्याति थी:

"बिन्ध्यपृष्ठेऽभिचंद्रेण चेदिराष्ट्रमाधिष्ठितम्।
शुक्तिमत्यास्तटेऽध्यायि नाम्ना शुक्तिमतीपुरी॥"

ऐतिहासिक पार्जिटर ने यह शुक्तिमती नदी को मध्यप्रदेश में प्रवाहित केन नदी बताया है। उनके मतानुसार चेदि राष्ट्र यमुना नदी के दक्षिण में चंबल नदी की उपत्यका से करवी नदी की उपत्यका तक विस्तृत था। परंतु पार्जिटर का यह मत कदापि ग्राह्य नहीं हैं। क्योंकि चेदि राष्ट्र की राजधानी से दस योजन की दूरी पर कलिङ्ग की दुर्णिबित्थ- (दुर्णिविष्ट) नामकी एक ब्राह्मण बस्ती थी। अतः चेदि राष्ट्र और कलिङ्ग में भौगोलिक व्यवधान विशेष नहीं था यह बेस्सान्तर जातक से ज्ञात होता है।

शुक्तिमती आधुनिक ओडिशा के बलांगीर जिले में प्रवाहित 'शुक्तेल' नदी है। इसी शुक्तेल के तटवर्त्ती मेण्डा ग्राम के निकटस्थ लोकापडा ग्राम से इन पंक्तियों के लेखक ने एक प्राचीन जनबसति के अवशेषों का उद्धार करके यहीं से प्राप्त लांछित मुद्राओं।(Punch marked Silver Coin) को तीन वर्गों में विभाजित किया है। वे नंद, मौर्य और मौर्योत्तर कालीन हैं। भारतवर्ष की अन्यान्य जगहों से मिले लांछित मुद्राओं की भाँति इन मुद्राओं के आकार और गठन में विषमता पायी जाती है। मुद्राओं में वृक्ष, भिन्न-भिन्न जीव, षड़ार-चक्र, सूर्य, पहाड़, पहाड़ पर अर्धचंद्र, तोरण, घेरे के बीच वृक्ष, विभिन्न धर्म संबंधी प्रतीक चिन्ह पाए जाते हैं। इसी जगह से पत्थर की मालाओं की कंठियां और एक पदक भी मिला हैं। ये सब कंठियां

भिन्न- भिन्न रंग और आकार की हैं। सभी अत्यंत मसृण और गुँथने के लिये उनके मध्य भाग में छिद्र भी है। इनमें उस काल के मानव का सौंदर्यबोध और कलात्मक अभिव्यक्ति निहित है। कुछेक अधबनी कंठियां भी मिली हैं। इससे समर्थित होता है कि प्राचीन काल में इस भांति की मालाएं यहां बनती थीं। इसी जगह से एक शिलालेख का खंडित टुकडा भी मिला है जो संग्रहीत होकर है। उसमें अंकित एक मात्र वर्ण को हमने "व" के रुप में पाठोद्धार किया है और हमारी राय में यह लिपि ईसवी चौथी सदी की गुप्तब्राह्मी है। इस क्षेत्र में यदि प्रत्नतात्त्विक भूखनन किया जाए तो ई.पू. पांचवी सदी से ईसवी चौथी सदी की अवधि की एक उन्नत जन बसति का अवेशष होने की संभावना को नकारा नहीं जासकता। हमने इसी क्षेत्र को शुक्तिमती पुर के रूप में, इसी कारण से चिह्नित किया है।

अभिचंद्र के पुत्र बसु चेदि राजवश के एक प्रख्यात राजा थे। वैदिक वाङ्मय एवं दर्शन-शास्त्र में उनकी असाधारण बिद्वत्ता थी। वौद्धिक समस्यायों के समाधान के लिये उस समय के आर्य ऋषियों तक को उनकी मध्यस्थता की अपेक्षा थी। सम्राट खारवेळ ने अपने हाथीगुम्फा शिलोलख में जिस राजर्षि वसु के वंशोद्भव कह कर स्वयं को परिचित कराया है वे ही अभिचंन्द्र के पुत्र है (उपरिचित बसु)।

चेदिराष्ट्र और कलिङ्ग दो प्रतिवेशी राज्य होने के कारण उनमें दीर्घकाल से निविड़ संबंध था। ई.पू. प्रथम शताब्दी के प्रारंभ में मगध में राजनैतिक दुर्बलता का सुअवसर पाकर चेदियों ने भारत के पूर्वांचल में शक्ति और प्रभाव संगठित करते लगे। उधर पश्चिमांचल में सातवाहन वंशी सिमुक, शक्तिशाली बनकर ई.पू. ७३ में मगध में सुंग-काण्व वंश के शासन का अंत किया। यह संभव है कि उस वैप्लविक परिवर्त्तन के समय चेदियों ने कलिंग में एक सुदृढ

शासन की नींव डाली हो। महामेघवाहन कलिंग में चेदि राजवंश के प्रतिष्ठाता थे। फलस्वरूप कलिंग मगध से स्वतंत्र हुआ और उसके गौरवमय इतिहास में नये नये अध्याय जुड़गये। खारवेळ, कलिंग में अपने वंश के तृतीय राजा थे, यह उनके हाथीगुम्फा शिलालेख से स्पष्ट प्रमाणित होता है (ततिय पुरिस युगे)। सभी ऐतिहासिकों ने महामेघवाहन को कलिंग का प्रथम चेदि राजा और खारवेळ को तृतीय चेदि राजा माना है। पर द्वितीय चेदि राजा के बारे में शिलालेख मौन है, यही उन्होंने दर्शाया है। हमारी राय में हाथीगुम्फा शिलोलेख की आद्यपंक्ति में उल्लिखित चेतराज खारवेळ के पिता तथा द्वितीय चेदि राजा हैं। हाथीगुम्फा शिलालेख में खारवेळ के शासन काल के तेरह वर्षो के क्रमिक विवरण के साथ साथ उनके पूर्वजों की सूचना भी है। इस स्थिति में उनके पिता का विस्मृत हो जाना असंभव सा लगता है। फिर भी खारवेळ के पिता चेतराज के बारे में विस्तृत विवरण देने को अबतक कोई ऐतिहासिक तथ्य या आधार मिला नहीं है।

यहाँ यह विचारणीय है कि खारवेळ और कुदेपसिरि दोनों ने अभिलेखों में अपने को महामेघवाहनवंशी के रूपमें परिचित कराया हैं। प्राचीन भारत के अनेक राजवंशों के नाम के साथ "वाहन" शब्द संलग्न है; उदाहरणतः दधिवाहन, सालिवाहन, मणिवाहन, नरवाहन, सातवाहन आदि। जैसे सातवाहन वंशी सिमुक के पूर्वज सातवाहन के नामानुसार वंश नामित हुआ है वैसे ही चेदि राजवंश का महामेघवाहन के नामानुसार नामित होना अधिक समीचीन लगता है। पर यह निश्चित है कि इस राजवंश का नाम कभी भी "ऐर" नहीं था। अभिलेखों में खारवेळ और कुदेपसिरि दोनों ने अपने को ऐर के रूप में प्रकाशित किया है। परिणामस्वरूप अनेक विद्वानों ने उन्हें ऐर वंशी शासक के रूपमें प्रतिपादित किया है तथा इस वंश की प्रतिष्ठा किसी ऐर नामक राजा के द्वारा हुई थी, ऐसा बतलाया है। यहां तक कि श्री काशीप्रसाद जयस्वाल ने उन्हें पुराण-वर्णित "ऐल" वंश में शामिल कर लिया है।

'ऐर' शब्द को किसी राजवंश का नाम के रूप में स्वीकारना केवल भ्रांति ही है, निःसंदेह कहा जा सकता है। डॉ नवीन कुमार साहु के मतानुसार प्राकृत का "ऐर" शब्द संस्कृत "आर्य" शब्द का रूपान्तरण मात्र है। अभिलेखों में ब्राह्मण सातवाहन-वंशी राजाओं के नाम के साथ भी "ऐर" है। अब यह प्रश्नका उठाया जाना स्वाभाविक ही है कि ब्राह्मण सातवाहन वंश का अन्य नाम "ऐर" था? प्राचीन भारत में "आर्य" या "ऐर" का प्रयोग सम्मानसूचक संबोधन के रूप में होता था। इसके अनेक दृष्टांत हैं। अतः खारवेळ को 'ऐर' वंशी मानना गलत ही होगा।

खारवेळ के राजत्व के विवरण के बारे में जानने के लिये उनके समसामयिक उदयगिरि और खण्डगिरि अभिलेखों पर आश्रित होना पड़ेगा। उदयगिरि के हाथीगुम्फा अभिलेख में खारवेळ के बाल्यकाल से लेकर शासन के त्रयोदश वर्ष तक का विवरण है। इसमें वर्षानुवर्ष के विस्तृत विवरण लिपिबद्ध है। अब तक भारत भर में प्राप्त दूसरे किसी भी अभिलेख में इस तरह के विस्तृत विवरण नहीं है। अभिलेख के अतिरिक्त पर्वत-गात्र पर उरेह गये चित्रों के माध्यम से भी खारवेळ के गौरवमय कार्य-विवरण के बारे में ज्ञात होता है। इन्हें भूलाकर मात्र अभिलेखों के जरिए खारवेळ के राजत्वकालीन ऐतिहासिक भूमिका पर विचार करें तो असंपूर्णता ही हाथ लगेगी। अतः यहाँ संक्षेप में तथा सहज सरलता से खारवेळ चरित की चर्चा, अभिलेख और खोदित चित्रों पर अवलंबित होकर करने का प्रयास भर कर रहे हैं।

—o—

हाथीगुम्फा शिलालेख:

ओडिशा की राजधानी भुवनेश्वर के समीप उदयगिरि का हाथीगुम्फा नामक एक प्राकृतिक गुम्फा के आभ्यंतरीण छत पर खोदित महाराज खारवेळ की एक सुदीर्घ प्रस्तर-लिपि है। यही भारत-प्रसिद्ध "हाथीगुम्फा शिलालेख" है। यह शिलालेख ओडिशा में अंग्रेज शासन की प्रतिष्ठा के प्राक्काल तक अज्ञात था। इसकी खोज कर सब से पहले ष्टर्लिंग साहब ने ई. १८२० में अपने "An Account of Geographical, Statistical and Historical of Orissa or Cuttack" ग्रंथ में संदर्भित किया था। तब इसका एक असंपूर्ण चित्र ही प्रकाशित हुआ था। परन्तु उस समय ब्राह्मी लिपि को पढ़ पाना संभव न होपाने के कारण विद्वानों को इसकी सही जानकारी नहीं मिल पायी। जेमृस प्रिन्सेप् ने ब्राह्मी लिपि का रहस्योद्घाटन ई.१८३५ तक कर लिया था, परिणामतः प्राचीन भारतीय इतिहास के अनेक तथ्य प्रकाशित हुए। हाथीगुम्फा अभिलेख की एक चाक्षुस प्रतिलिपि (Eye copy) काफी परिश्रमसे मार्खम् किटो (M. Kittoe) ने बनायी और वही प्रतिलिपि पाठोद्धार के लिये प्रिन्सेप को भेजीगयी। हाथीगुम्फा अभिलेख प्रथम बार प्रिन्सेप के द्वारा पठित होकर ई. १८३७ में प्रकाशित हुआ (J.A.S.Vol. VI). इसके बाद फिर इसे ई. १८७७ में अलेकजींडर कर्निंहाम् ने अपने संकलित ग्रंथ (A. Cunningham- "Corpus Inscriptionum Indicarum Vol. I) में प्रकाशित करवाया। उसके पश्चात राजेंद्रलाल मित्र ने Antiquities of Orissa, Vol. II ग्रंथ में ई. १८८० में सामान्य परिवर्त्तित करके प्रकाशित किया था। उसी वर्ष लॉक साहब (Locke) स्वयं उदयगिरि आए और इस अभिलेख का एक "प्लास्टर कास्ट" तैयार किया। अब वही "प्लास्टर कास्ट" कलकत्ता के इण्डियन म्यूजियम में संरक्षित है। ई. १८८५ में विएना में प्राच्य विद्याविशारदों को लेकर आंतर्जातिक कांग्रेस का छठा अधिवेशन का आयोजन हुआ था (VIth International Congress of Orientalist), जहां पण्डित भगवान लाल इन्द्रजी ने हाथीगुम्फा अभिलेख का एक संशोधित पाठ प्रस्तुत किया था। यह उल्लेखनीय

है कि सबसे पहले इंद्रजी ने ही "खारवेळ" का नामोल्लेख किया है। लिपि—विज्ञानी ब्यूलर (Bühler) ने ई १८९५ और १८९८ में इंद्रजी के पाठ में कतिपय संशोधन परिवर्त्तन किये। ई १९०६ में ब्लॉक साहब (J.B. Block) ने इस अभिलेख की एक प्रतिच्छवि स्याही से बनाकर सुपण्डित कीलहॉर्न (Keilhorn) को प्रदान किया था। इसे J.H. Fleet के पास विलायत भेजागया और फ्लीट् साहब ने ई १९१० में इसका संशोधित पाठोद्धार कर रॉयल एसिआटिक (Royal Asiatic) पत्रिका में प्रकाशित करवाया था। इसी पत्रिका में ल्यूदर (H. Lüder) साहब की टिप्पणी भी प्रकाशित हुई थी। इसके पश्चात विशिष्ट ऐतिहासिक टामस् ने (F.W.Thomas) Annual Report of the Archaeological Survey, India, 1922-23 में और स्टेन कोनो ने (Sten Konow- Acta Orientalia Vol. I) इस अभिलेख पर नये सिरे से प्रकाश डाल कर इसके ऐतिहासिक महत्त्व का प्रतिपादन किया था। ऐतिहासिक राखालदास बेनर्जी स्वयं ई १९१३ में उदयगिरि आए थे और हाथीगुम्फा अभिलेख का एक फोटो चित्र लिया था। उसी फोटोचित्र का प्रकाशन काशी प्रसाद जयस्वाल के द्वारा ई १९२७ में बिहार- ओडिशा रिसर्च सोसाइटी जर्नल में हुआ था। उसी वर्ष जयस्वाल भी उदयगिरि आए थे और स्वयं शिलालेख का अध्ययन अनुशीलन करने का अवसर पाकर अपने पाठ में कुछेक संशोधन कर पाए थे। फिर १९१९ ई. में जयस्वाल और बेनर्जी दोनों एक साथ आए और विभिन्न दृष्टिकोण से शिलालेख की समीक्षा की थी। उनके वापस जाने के पश्चात पटना म्यूजियम के लिये इसी अभिलेख का प्लास्टर कास्ट बनाया गया और कुछेक फोटो भी लिए गये थे। राखालदास और जयस्वाल ने हाथीगुम्फा अभिलेख का पाठोद्धार करने के लिए अक्लांत परिश्रम किया है। वे दोनों फिरसे सन् १९२४ में उदयगिरि आकर अभिलेख के विभिन्न अंशों का पुन निरीक्षण किया था। अकेले जयस्वाल ने सन् १९२७ में बिहार-ओडिशा रिसर्च सोसाइटी जर्नल में और बाद में १९२९ में बेनर्जी के साथ मिल कर एपीग्राफिया इण्डिका में इसी अभिलेख

का संशोधित पाठ का प्रकाशन करवाया था (Epigraphia Indica, Vol.XX) । १९२९ में वेणीमाधव बड़ुआ का "The Old Brahmi Inscriptions in Udayagiri and Khandagiri caves" ग्रंथ प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथमे बड़ुआ महोदय ने अभिलेख के पूर्णांग पाठ देने की चेष्टा की थी। पर उनके पठन में कल्पना की अधिकता के कारण लगता है उसकी ऐतिहासिक उपादेयता ही नहीं रही। लिपिविद् दीनेश चंन्द्र सरकारने भी सन् १९४२ में अपने Select Inscriptions, Vol.I में भी इसी अभिलेख का पाठोद्धार किया है। इस संदर्भ में इतिहासकार नवीन कुमार साहू ने अपने अंग्रेजी ग्रंथ "खारवेळ" में अन्तिम प्रयास किया है।

इसे कदापि नकारा नहीं जा सकता कि अनेक प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों ने इस अभिलेख का प्रमाद रहित पाठोद्धार करने के हेतु वर्षों के अथक श्रम के बावजूद इसका सही पाठोद्धार हो नहीं पाया है, न व्याख्या ही। क्योंकि अभिलेख की आद्य चार पंक्तियों के अतिरिक्त अेनकांशों में वर्ण पठनयोग्य अवस्था में नहीं है। हमने यहां अपने पूर्ववर्ती विद्वानों के पाठोद्धार और अभिलेख ही के अध्ययन और अनुशीलन के आधार पर निम्नोक्त पाठ और टीका प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास कियाहै।

पंक्ति - १

नमो अरहंतानं [।।] णमो सवसिधानं [।।] ऐरेण महाराजेन महामेघवाहनेन चेतराज वस वधनेन पसथ सुभलखलेन चतुरंतलुठ[न] गुणउपेनेत कलिंगाधिपतिना सिरि खारवेळेन

पंक्ति-२

पंदरस वसानि सीरि कडार सरीरवता कीडिता कुमार कीडिका [।।] ततो लेख रूप गणना ववहार विधि विसारदेन सवविजा वदातेन

नव वसानि योवराजं पसासितं [॥] संपुणं चतुवीसति वसो तदानी वधमानो सेसयो वेनाभि विजयो ततिये

पंक्ति-३

कलिंग राजवसे पुरिस युगे महाराजाभिसेचनं पापुनाति [॥] अभिसित मतो च पधमेवसे वात विहत गोपुर पाकार निवेसनं पटिसंखारयति कलिंग नगरि खिवीर सितल तडाग पाडियो च वंधापयति सवुंयान पटि संटपनं च

पंक्ति-४

कारयति पनतिसाहि सतसहसेहि पकतियो च रंजयति [॥] दुतिये च वसे अचितयिता सातकर्नि पछिमदिसं हय गज नर रध बहुलं दंडं पठापयति [॥] कन्हवेनां गताय च सेनाय वितासिति असिक नगरं [॥] ततिये पुन वसे

पंक्ति-५

गंधव वेद बुधो दप नत गीत वादित संदसनाहि उसव समाज कारापनाहि च कीडापयति नगरिं [॥] तथा चवुथे वसे विजाधराधिवासं अहत पुवं कलिंग पुवराज निवेसितं.... वितध मकुट स ... निखित छत

पंक्ति- ६

भिंगारे हित रतन सापतेये सव रठिक भोजके पादे वंदा पयति [॥] पंचमे च दानी वसे नंदराज तिवस सत ओघाटितं तनसुलिय वाटा पनाडि नगरि पवेस [य] ति.... [॥] अभिसितो च [छठे] वसे राजसेयं संदंसयं तो सवकरण

पंक्ति-७

अनुगह अनेकानि सतसहसानि विसजति पोरं जानपदं [।।] सतमं च वसे पसासतो वजिरघरवति.... स मतुक पद [पुनां] स [कुमार]... [।।] अठमे च वसे महति सेनाय महत ... गोरधगिरि

पंक्ति-८

घातापयिता राजगहं उपपीडापयति [।।] एतिनं च कंमपदान संनादेन सबत सेन वाहने विपमुंचितुं मधुरं अपयातो यवनराज ...म*... यछति पलव भार

पंक्ति-९

कपरूखे हय गज रध सह यति सवघरावास परिवेसने... सव गहणं च कारयितुं बम्हणानं जय परिहार ददाति [।।] अरहंत [पसादाय] नवमे च वसे

पंक्ति-१०

[नगरिय कलिंग][२] राजानिवासं महाविजय पासादं कारयति अठतिसाय सतसहसेहि [।।] दसमे च वसे दंड संधि साम [मयो] भरधवस पठानं महीजयनं... कारापयति [।।] एकादसमे च वसे [सतुनं] पायातानं च मणि रतनानि उपलभते[।।]

---

* स्टेन कोनो ने "डिमित" और श्री जयस्वाल ने "डिमिट" के रूप में इसका पाठोद्धर किया है। अब केवल "म" वर्ण ही है.।

२. यह पाठ संदेहास्पद है।

पंक्ति -११

[कलिंग] पुवराज निवेसितं पिथुडं गधवनंगलेन कासयति [॥] जनपद भावनं च तेरसवस सत कतं भिदति तमिर देह संघातं [॥] बारसमे च वसे...वितासयति उतरापध राजनो [ततो]

पंक्ति -१२

मागधानं च विपुलं भयं जनेतो हथसं गंगाय पाययति[॥] मागधंच राजानं बहसतिमितं पादे वंदापयति [॥] नंदराजनीतं कालिंगजिन संनिवेसं [कलिंग राज] गह रतन परिहारे हि अंग मगधवसुं च नयति [॥]

पंक्ति - १३

...तुं जठर लखिल गोपुरानि सिहरानि निवेसयति सतविसिकनं परिहारेहि [॥] अभुत मछरियं च हथीनाव [तं] परिहर [उपलभते] हय हथी रतन मानिकं [॥] पंड़राजा एदानि अनेकानि मुत मनिरतनानि आहारापयति इध सतस [हसानि]

पंक्ति -१४

[दक्षिणापथ] (?) [वा]सिनो वसीकरोति [॥] तेरसमेच वसे सुपवत विजय चके कुमारी पवते अरहते [हि] पखिन संसितेहि कायनिसीदियाय....राजभितिनं चिनवतानं वासासितानं पूजानुरत उवासग [खा]रवेल सिरिना जीवदेह सायिका परिखाता [॥]

पंक्ति -१५

...सकत समण सुविहितानं च सव दिसानं यतिनं तपस इसिनं संघायनं

अरहत निसीदिया समीपे पभारे वराकर समुथापिताहि अनेक योजनाहि ताहि पनतिसाहि सतसहस्रेहि सिलाहि सिहपथ रानिस [भलासेहि]

पंक्ति -१६

....पटलिक चतरे च वेडुरिय गभे थंभे पटिथापयति पानतरिय सतसहसेहि [॥] मुरिय काल वोछिनं च चोयठि अंग संतिकं तुरियं उपादयति [॥] खेमराजा स वधराजा स भिखुराजा धमराजा पसंतो सुनंतो अनुभवंतो कलणानि

पंक्ति -१७

गुणविसेस कुसलो सवपासंड पूजको सवदेवायतन संकार कारको अपतिहत चक वाहन बलो चकधरो गुतचको पवत चको राजसि वसुकुल विनिसितो महा विजयो राजाखारवेल सिरि [॥]

भावानुवाद

पंक्ति -१-२: अर्हतों को नमस्कार। सभी सिद्धों को नमस्कार। आर्य महामेघवाहन महाराजा श्री खारवेल, जो चेतराज के वंश के गौरववर्धक, सभी शुभ लक्षणों के आधार स्वरूप हैं तथा जिनके गुणराशि चतुर्दिशाओं में परिव्याप्त है, उन्हीं सुंदर पिंगल वर्ण वपुधारी कलिङ्गाधिपति ने पंद्रह वर्षों तक कुमार सुलभ क्रीडाएं की थी।

पंक्ति -२-३ : तत्पश्चात लेख, रूप, गणना, व्यवहार, विधि आदि विषयों के अध्ययन से सभी विद्याओं के पारंगत हुए और नौ वर्षों तक युवराज के रूप में राज्य का शासन किया। चतुर्विंशति वर्ष की आयु प्राप्त हो वे कलिङ्ग राजवंश के तृतीय पुरूष के रूपमें सिंहासन पर वेन्य के समान अभिषिक्त हुए।

पंक्ति -३-४: अभिषेक के प्रथम वर्ष में उन्होंने वात्याविध्वस्त कलिङ्ग नगरी के दुर्ग, प्राकार, गोपुर, और अट्टालिकाओं का संस्कार किया। साथ ही शीतल पुष्करिणियों के सोपानों का निर्माण कर उपवनों को फिरसे सजाया था। उन सभी कार्यों के लिये पंचत्रिशत लक्ष मुद्रा के व्यय से प्रजारंजन किया था.।

पंक्ति -४-५ : द्वितीय वर्ष में उन्होंने सातकर्णी की उपेक्षा कर अश्व, गज, पदातिक और रथ सहित विशाल सेना पश्चिम की और प्रेषित किया था।
तृतीय वर्ष में उन गांधर्ववेद-प्रवीण महाराजा ने दप, नृत्य, गीत, वाद्य सहित भिन्न भिन्न उत्सव समाजों का अनुष्ठान करवाया। फलस्वरूप कलिङ्ग नगरी फिर से क्रीडा मुखरित हो उठी।

पंक्ति ५-६: चौथे वर्ष उन्होंने कलिङ्ग के पूर्व राजाओं के द्वारा संगठित अजेय विद्याधर राज्य... (अभिलेख में यह अंश अस्पष्ट है)। राष्ट्रिक और भोजक राज्यों के राजाओं ने भग्नमुकुट होकर राजछत्र और लांछन का त्याग कर मणि, रत्न, संपदा, के समर्पण से उनकी पद-वंदना की थी।

पंक्ति ६-७: राजत्व के पांचवे वर्ष में उन्होंने तीन सौ वर्ष पूर्व नंद राजा के द्वारा खुदाई गयी जल-प्रणाली का तनसुली के पथ से कलिङ्ग नगरी तक विस्तार किया था।
छठे वर्ष उन्होंने राजैश्वर्य का प्रदर्शन स्वरूप पौर और जनपदों के कर और अनुग्रह छोड़ने की घोषणा की थी।
राजत्व के सातवें वर्ष वजिरघरराणी को मातृत्व प्राप्त हुआ।

पंक्ति ७-८: आठवें वर्ष विशाल सेना लेकर उन्होंने सुदृढ़ गोरथगिरि दुर्ग को विध्वंसित किया था, तथा राजगृह [मगध] वासियों को

नियंत्रित किया था। यह समाचार पाकर यवनराज ने मथुरा में अवस्थापित अपने सैन्यदल की सुरक्षा के लिये पलायन किया था।

पंक्ति ८-९: यति [खारवेळ] ने पल्लवभार कल्पवृक्ष को हय, गज और रथादि सहित स्वदेश लाकर प्रत्येक गृह और आवासों में आवंटित किया था। विजयलब्ध धन सबका ग्रहणीय है यही प्रतिपादित करने के लिये उन्होंने ब्राह्मणों को दान दिये।

पंक्ति ९-१०: नौवें वर्ष में उन्होंने अष्टात्रिंशत मुद्राओं के व्यय से महाविजय प्रासाद नामक एक राज-निवास का निर्माण किया था। दशम वर्ष में दण्ड, संधि और साममय [खारवेळ] ने भारतवर्ष विजय के लिये सैन्य प्रेषण किया था।

पंक्ति १०-११ : एदादश वर्ष में उन्हें पलायन करते शत्रुओं से अनेक मणि रत्नादि प्राप्त हुए।
उन्होंने कलिङ्ग के पूर्ववर्ती राजाओं के द्वारा प्रतिष्ठित पिथुड को गर्दभ संयोजित लांगल से कर्षित किया था। इसके अतिरिक्त वे तेरह सौ वर्षों से संगठित तामिल राष्ट्रसंघ को तोड़ने में सफल हुए थे।

पंक्ति ११-१२ : द्वादश वर्ष में उन्होंने एक लाख सैन्य बल लेकर उत्तरापथ के राजाओं को संत्रस्त किया। उन्होंने हाथियों को गंगा में जलपान कराते समय मगधवासियों के मनमें अपार भय संचारित किया था। मगधराज वहसतिमित [वृहष्पति मित्र] ने उनकी पद-वंदना की थी। तत्पश्चात उन्होंने नंदराजा के द्वारा लिया गया कालिंगजिन के सहित अंग और मगध राज्यों से अनेक संपदा ले आए थे।

पंक्ति १३ : उन्होंने [सत विसिकनं] दो हजार [?] मुद्रा के व्यय से सुदृढ तथा सुंदर गोपुर और शिखरों का निर्माण किया था।

उन्होंने अदभुत और विस्मयकारी हाथियों और नावों को खोकर अनेक अश्व, गज, मणि - माणिक्य प्राप्त किया था। पाण्ड्यराज एक लक्ष मूल्य के मुक्ता और मणि-रत्न उपहार के रूप में लेकर वहां [कलिङ्ग नगरी को] आए थे।

पंक्ति -१४ : उन्होंने ..... के अधिवासियों को वशीभूत किया था। तेरहवें वर्ष में राजवृत्तिधारी, झीनवासधारी, वर्षावासी अर्हतों के पूजक, उपासक श्री खारवेल ने विजयचक्र प्रवर्तित कुमारी पर्वत के गात्र पर सर्वत्यागी जपोद्यापक अर्हतों के शरीर विश्राम हेतु आश्रमस्थलों का खनन करवाया था।

पंक्ति - १५-१६ : सिंहपथ रानी की इच्छानुसार सम्मानास्पद अर्हतों की सुविधा के लिये तथा सभी ओर से पधारनेवाले यति, तापस, ऋषि और संघायनों के लिये उन्होंने अनेक योजन से आनीत पंचत्रिंशति लक्ष शिलाखण्डों से अर्हतो के आश्रय स्थल के समीप तथा सम्मुख भाग में सुंदर हर्म्य का निर्माण किया था जिसमें पाटल-वर्ण के धरातल पर वैदुर्य खचित खंभे थे। इसके निर्माण के लिये एकशत पांच लक्ष मुद्राओं का व्यय हुआ था। उन्होंने मौर्य शासन-कालमें अव्यवस्थित चौषठ कलायुक्त तौर्यत्रिक का उन्नति-साधन किया था।

पंक्ति -१७ : इस प्रकार राज्य शासन कर, क्षेमराज, बृद्धिराज, भिक्षुराज, धर्मराज, राजर्षि वसु के दायाद, सभी विशेष गुणों का आधार, सर्वधर्म पूजक, सर्व देवायतन संस्कारक, अप्रतिहत सेना-बल के अधिकारी, साथ ही शासन चक्रधारक, नियम शृंखलाओं के रक्षक, विधियों के प्रवर्तक, महाविजयी श्री खारवेल ने सभी विषयों को देख - सुन कर तथा अनुभव कर अनेक कल्याणमय कार्य संपादन किये हैं।

—o—

खारवेळ का व्यक्तिगत इतिहास

"खारवेल" शब्द का अर्थ शायद समुद्र या समुद्र-वेष्ठित देश है। संस्कृत शद्व "क्षारवेल" का प्राकृत रूप है "खारवेल"। वह उल्लेखनीय है कि खारवेल के हातीगुम्फा शिलालेख में सर्वत्र "क्ष" के स्थान पर "ख" वर्ण का प्रयोग हुआ है। प्रख्यात भाषातत्वविद् स्वर्गीय सुनीत कुमार चाटार्जी ने खारवेळ को द्रविड बतला कर द्रविड भाषानुसार "खारवेल" का अर्थ "कृष्णकाय" बतलाया है।

पर हमने इसके पूर्व आलोचना की है कि चेदि राजवंश वैदिक काल से ही एक सम्मानास्पद आर्य जाति के रूपमें स्वीकृत है। इसलिये खारवेळ को द्रविड मानना कदाचित समीचीन नहीं होगा। उसी तरह उन्हें कृष्णकाय तथा भयंकर रूपवाला भी कहा नहीं जा सकता। वे पिंगलवर्ण वपुवान रूपवंत पुरूष थे, यह हाथीगुम्फा शिलालेख ही से प्रतिपादित हो जाता है। जन्म के समय से उनके शरीर पर महामानव के लक्षणोंका होना ज्ञात था [हाथीगुंम्फा शिलालेख पं १-२]।

बाल्यावस्था में खारवेळ के उन्मुख व्यक्तित्व के विकास के लिये विशेष प्रयत्न हुआ था। विविध क्रीड़ओं के माध्यम से शिक्षारंभ होकर पंद्रह वर्ष की आयु तक वे लेखन [राजकीय पत्रालाप] रूप [मुद्रा-विज्ञान] गणना [गणित ज्ञान] व्यवहार [न्याय] विधि [प्रशासनिक] और सभी विद्याओं में निपुण हो गये थे।

हाथीगुम्फा अभिलेखसे यह स्पष्ट होजाता है कि खारवेळ पंद्रह वर्ष की अवस्था में युवराज पद पर अधिष्ठित हुए थे। परंतु उन्हें किसने अधिष्ठित कियाथा यह इस अभिलेख से ज्ञात नहीं होता। अनुमान है, उस समय खारवेळ के पिता की अकालमृत्यु के कारण

उन्हें नाबालिग अवस्थामें ही युवराज की पदवी मिली थी और उन्होंने दूसरों की प्रशासनिक सहायता से राज्य का शासन किया था। इस भांति की शासन विधि को प्राचीन जैनग्रंथ " आयारंग सुत्त" में "युवराज्यानि" के रूप में उल्लेख किया गया है। प्राचीन काल में राजाओं के अकाल वियोग की स्थिति में नाबालिग युवराजों को सिंहासनासीन करके राजमाताओं के द्वारा राज्य शासन के अनेक दृष्टांत हैं। पर हाथीगुम्फा शिलालेख इसके बारे में पूर्णतया मौन है। स्थिति चाहे कुछ भी हुई हो पच्चीस वर्ष की आयु में खारवेळ ने महाराजा के रूपमें राज्य की शासन भार संभाला था।

अभिलेखीय विवरण और उदयगिरि खण्डगिरि में उत्कीर्णित चित्रावली से यह प्रतिपादित होता है कि खारवेळ की दो रानियां थीं। संभवत: उनके अभिषेक उत्सव के समय उनका प्रथम विवाह हो चुका था। हाथीगुम्फा अभिलेख में इन्हीं महिषी को वजिरधर रानी के रूप में अभिहित किया गया है। उपरोक्त वजिरधर को आधुनिक मध्य-प्रदेश स्थित जबलपुर के समीपवर्ती "बेरागढ़" के रूप में चिन्हित किया गया है। इन्हीं महिषी का परिचय मंचपुरी गुफा अभिलेख से भी प्राप्त होता है। उसमें उन्हें राजा ललार्क की दुहिता बतलाया गया है। राजा ललार्क राजा हस्तीसिंह के प्रपौत्र थे। अत. अभिलेख से ललार्क के पिता और पितामह के बारे में भी कुछ पता नहीं चलता। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि अन्य समसामयिक अभिलेख में भी ये दोनों नाम नहीं पाए गये हैं। अत: "वजिरधर रानी" के पितृकुल की जानकारी दे पाना असंभव ही है।

हाथीगुम्फा अभिलेख में द्वितीय महिषीको सिंहपथ-राणी के नामसे नामित किया गया है। सिंहपथ को आधुनिक आंध्रप्रदेश के श्रीकाकुलम जिला के सिंगुपुरम के रूपमें चिन्हित किया गया है। ई. चौथी सदी में माठर राजवंश के राजत्वकाल में सिंहपुरम ही कलिङ्ग की राजधानी थी, यह भी महत्त्वपूर्ण है। खारवेल ने किन परिस्थियोंति

में द्वितीय महिषी का पाणिग्रहण किया था, उसका कोई अभिलेखीय विवरण नहीं मिलता। परन्तु राणीगुम्फा की ऊपरी सतह पर उत्कीर्णित चित्रों के मनन के आधार पर प्रख्यात इतिहासकार स्वर्गीय नवीन कुमार साहू के द्वारा प्रदत्त विवरण कुछ इस प्रकार है : (चित्र क्र.२)

एक बार सपरिवार सिंहपथ के राजा वन-विहार करके अंत में स्नान के लिए किसी पद्म सरोवर को आए। वह सरोवर अरण्य के बीचोंबीच था। पहले ही से उस सरोवर में एक विशालकाय सुदंत हाथी कुछेक हस्तिनियों के साथ उन्मुक्त क्रीडाएं कर रहा था। राजाने उस हस्तीदल को भगाने का प्रयास किया तो हाथी क्रुद्ध हो उन पर आक्रमण करने को निकल आया। राजा ने साहससे उसका मुकाबला किया और दोनों दलों के बीच लड़ाई छिड़ गयी। उस समय राजकन्या ने अपने प्राण की परवाह न करके हाथी के आगे आकर उसपर अपने अंगाभरणों से प्रहार किया तो घायल होकर हाथी पीछे हटने लगा। पर तब तक राजा काफी घायल हो चुके थे। राजकन्या, उन्हें उपचार के लिये समीपस्थ एक गुफा के अंदर ले आयी।

हाथियों के साथ संघर्ष के समय राजदल की कुछ महिलाएं भयभीत हो भाग निकलीं। अनुमान है कि उन महिलाओं में राजा की कोई दासी किसी प्रभावशाली व्यक्ति की गुप्तचरी के रूपमें काम करती थी। उस प्रभावशाली व्यक्ति का राजकन्या को प्राप्त करने की गुप्त अभिलाषा थी और अंतःपुर की वही परिचारिका उस इच्छा-पूर्ति की सहकारिणी थी। वह लंपट पुरुष, राजा की दुस्थिति के समाचार उस गुप्तचरी से पाकर चहेती राजकन्या को पाने की लालसा से अस्थिर हो उठा। वह उसे राह बता कर गुंफा तक ले आयी। वहां उसने राजा को आहत और असहाय अवस्था में देख कर उनकी हत्या करदी और राजकन्या के प्रति बल का प्रयोग करने

को उद्यत हुआ तो उस वीरबाला ने अपने मृत पिता का अस्त्र लेकर उसका सामना करने लगी। पर वह शीघ्र ही पराजित होगयी और बंदी बनाली गयी।

सौभाग्य से उस समय महाराजा खारवेळ आखेट के लिए उसी अरण्य में सेना सहित उपस्थित थे। अकस्मात सम्राट् के सेना-समूह के कोलाहल से वनभूमि मुखरित होजाने के कारण उस लंपट पुरुष ने राजकन्या को अरण्य में अकेली छोड़ कर भय से पलायन किया।

उसी समय खारवेळ के द्वारा शराहत होकर एक मृग किसी वृक्ष के नीचे आ गिरा। सम्राट अश्वपृष्ठ से अवतरित हुए और उस आहत मृग की ओर अग्रसर हुए। पास आकर उन्होंने देखा, वृक्ष की शाखा पर एक तरुणी बैठी आश्रय की प्रार्थना कर रही है। उसका परिचय पाकर सम्राट ने उसे अभय प्रदान किया और उसे आदर सहित साथ ले आए। सिंहपथ राजकन्या का उद्धारकर ले आने के उपलक्ष्य में कलिङ्ग नगरी में नृत्य गायन और विविध उत्सवों के आयोजन हुए। उत्कीर्णित चित्र में स्वयं सम्राट उस नवागता राजकन्या को पास बिठा कर नृत्य गायन का उपभोग करते दिखाए गये हैं। चित्रावली के सर्वशेष अंश में उसी राजकन्या के साथ विवाह कर प्रमोद-उद्यान में उन दोनों का साथ साथ विहार के दृश्य चित्रित हैं।

राणीगुम्फा की निचली सतह की दायीं और खोदित चित्रावली में सम्राट खारवेळ दोनों रानियों के बीच बैठे हुए दर्शाए गये हैं। कई चित्रों से यही ज्ञात होता है कि खारवेळ के साथ दोनों रानियां भिन्न—भिन्न अवसरों पर जनसाधारण के सम्मुख उपस्थित हुआ करती थीं।

संभवत: हाथीगुम्फा का शिलालेख खारवेळ के राजत्व के चतुर्दश वर्ष ही उत्कीर्णित हुआ था। कारण यह है कि उसमें केवल उनके तेरह वर्षों के कार्य विवरण वर्षानुक्रम से है। उसका परवर्त्ती इतिहास आज भी अंधकारावृत्त है। अत: खारवेळ ने कितने वर्षों तक राज्य का शासन किया था और कब तक जीवित थे कहा नहीं जा सकता।

कलिङ्ग के महाराजा खारवेळ

हाथीगुम्फा शिलालेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कलिङ्ग में महाराज खारवेळ चेदि महामेघवाहन वंश के तृतीय राजा थे।
"वेनाभि विजयो ततिये कळिंग राजवसे पुरित युगे महाराजा भिसेचनं पापुनाति।" (पं. २/३)

वेन के पुत्र का अभिषेक उत्सव के साथ खारवेळ का अभिषेक उत्सव की तुलना तात्पर्यपूर्ण है। महाभारत की वर्णनानुसार अभिषेक के समय देवता और ऋषिगण वेन के पुत्र पृथु को शपथ लेने को कहते हुए निर्देश देते हैं:-

.....प्रतिज्ञा चाधिरोहस्य मनसा कर्मणागिरा।
पालयिस्यामहं भौमं ब्रह्म इत्येन चासकृत॥
यक्षात्र धर्मो नित्योक्त दण्डनीति व्यापाश्रय।
तमशंक: करिष्यामि स्ववशो न कदाचन॥

अर्थात्, साथ ही प्रतिज्ञा करो कि मैं मन, वचन और क्रियायों के द्वारा पृथ्वी [देश] का निरंतर पालन करूंगा। वेद में दण्ड नीति से संबंध रखनेवाले जो नित्य धर्म बताये गये हैं, नि:शंक होकर मैं उनका पालन करूंगा। कभी स्वच्छंद नहीं होऊगा। [महाभारत: शांति पर्व : ५२/१०६-०७]

पृथु के बारे में महाभारत के इसी पर्व में फिर कहा गया है-

"तेन धर्मोत्तरश्चार्य कृतो लोको महत्मनो
रंजितश्च प्रजाः सर्वास्तेनराजेति शब्यते ॥

अर्थात उस महात्माने संपूर्ण्ण जगत में धर्म की प्रधानता की स्थापना करके समस्त प्रजाओं का रंजन किया था अतः वे राजा कहलाते थे।

धर्म की संस्थापना और प्रजानुरंजन, खारवेळ का भी प्रमुख कार्य था, यह हाथीगुंफा शिलालेख से प्रमाणित होता है। खारवेळ का शासन अनेकांशों में मौर्य शासन के अनुरूप था। पर उसकी नीति और लक्ष्य कुछेक मौलिक दृष्टिकोण से प्रभावित थे। कलिंग में मौर्य—शासन विजेताओं का शासन था। शासकों की क्षमता का सुदृढीकरण, और जनता का स्वाधीन मनोभाव का दमन उसका उद्देश्य था। उसी लक्ष्य से अशोक ने कलिंग में द्वैत—शासन का प्रवर्तन किया था। वे अपने को जनता के पिता के रूप में घोषित कर उन्होंने धर्म के माध्यम से सब को संयत और नियमानुवर्ती बनाने का प्रयास करते थे, साथ ही कठोर साम्राज्यवादी नीतियों को मान कर जनता की राजनैतिक आकांक्षाओं का हनन करने में भी पीछे नहीं हटते थे। पर खारवेळ के शासन का आदर्श पूर्णतया भिन्न था। वे कलिंग की संतान, कलिंग की राजनैतिक परंपराओं का पोषक तथा कलिंग संस्कृति के पुजारी थे। राज्य के वैभव और गौरव—वर्धन ही उनके शासन का उद्देश्य था। अतः उन्होंने राज क्षमता का दृढीकरण से बढ़ कर उन्होंने कलिंग राज्य को शक्तिशाली तथा समृद्धिशाली बनाने के लिये प्रयास किया था। उनके मुख्यरूप से जैनधर्मी होने के बावजूद उनका अन्य धर्मों के प्रति उदार मनोभाव ने उनके व्यक्तित्व को महिमामण्डित किया है।

खारवेळ के अभिषेक उत्सव के एक वर्ष बाद कलिंग का उपकूलवर्ती क्षेत्र वातविध्वंसित होने के कारण कलिंग नगरी के ऊंचे—ऊंचे

प्रासाद, गोपुर और दुर्गों के प्राचीर ढह गये थे जिससे कलिंग की पर्याप्त हानि हुई थी। अभिषेक के तुरंत बाद प्रथम वर्ष में ही उन्होंने राजधानी कलिंगनगरी के भग्न प्रासाद और प्राचीरों का पुनः निर्माण करवाया एवं राजधानी को सुदृढ तथा सुशोभित किया था। दुर्ग, प्राचीर और अट्टालिकाओं के संस्कार-साधन के साथ साथ उन्होंने प्राचीन जळाशयों का भी जीर्णोध्दार करवाया और उन्हें सुंदर सोपानश्रेणी से सजा कर वात—विध्वंसित उद्यानों को नवीन रूप प्रदान किया था। इस विकास कार्य के लिये पैंतीस लाख मुद्राओं का व्यय हुआ था। तीन सौ वर्ष पूर्व कलिंग में महापद्म नंद ने जो नहर खुदवायी थी, खारवेळ ने अपने शासन के पांचवे वर्ष में उसकी अभिवृद्धि कर जलप्रवाह को कलिंग नगरी तक ले आये। वह जल-प्रवाह कलिंग में कृषि, स्नान, संतरण तथा पानीय के लिये अत्यंत सहायक सिध्द हुआ। राजत्व के छठे वर्ष में उन्होंने राजैश्वर्य का प्रदर्शन करते हुए पौर और जनपदों को निष्कर घोषित किया। संभवत पट्टमहिषी बजिरघरराणी के गर्भाधान के उपलक्ष्य में वह घोषणा हुई थी, तथा वैदेशिक धन-संपदाओं से राजकोश परिपूर्ण था। अतः उन्नयन कार्योंपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। राजत्व के नौवें वर्ष में खारवेळ ने जैन—तीर्थ मथुरा को यवनों की अधीनता से मुक्त किया। तत्पश्चात अड़तीस लाख मुद्राओं के व्यय से विजय स्मारिका के रूप में एक महा—विजय प्रासाद का निर्माण किया था।

राज्य में सांस्कृतिक विकास के लिये संगीत, नृत्य, उत्सव, समाज [नाटकादि सांस्कृतिक अनुष्ठान] आदि का आयोजन अपरिहार्य माना जाता है। इन कार्यों के लिये राजकीय पृष्ठपोषकता एकांत रूपसे आवश्यक है, ऐसा रामायण में भी कहा गया है-

"नाराजके जनपदे प्रहुष्टनटनर्तकाः।
उत्सवाश्च समाजाश्च वर्धन्ते राष्ट्रवर्धनाः॥

अर्थात् अराजक देश में राष्ट्रको उन्नतिशील बनानेवाले उत्सव, जिनमें नट और नर्तक हर्ष में भर कर अपनी अपनी कलाओं का प्रदर्शन करते हैं, बढने नहीं पाते तथा अन्यान्य राष्ट्र हितकारी संघ भी नहीं पनपने पाते ।

हाथीगुम्फा शिलालेख में खारवेळ का क्रीडा और संगीत के प्रति प्रगाढ़ अनुराग की स्पष्ट सूचना है। अभिलेखों के अतिरिक्त उदयगिरि और खण्डगिरि के विभिन्न गुफाओं में खोदित चित्रों में भी उस समय के नाट्यानुराग का चित्रण है। उस पर स्वतंत्र रूप से इसी ग्रंथ में आलोचना है।

सामरिक कृतित्व:

खारवेळ के दिग्‌विजय के प्रसंगों पर आलोचना के पहले भारत का तत्‌कालीन राजनैतिक मानचित्र के संदर्भ में जानना आवश्यक है। उस समय आहिमाद्री कुमारिका विस्तृत क्षेत्र को भारतवर्ष कहा नहीं जाता था। वस्तुत. भारत के प्राचीन अभिलेखों में खारवेळ के हाथीगुफा अभिलेख में ही भारतवर्ष का आद्य नामोल्लेख हुआ था [भरधवस पठानं महीजयनं - पं.१०]। उस समय उत्तर भारत में गंगानदी के तटवर्ती क्षेत्र को ही मुख्यत भारतवर्ष के रूपमें अभिहित किया जाता था। सिंधु नदी के तटवर्ती क्षेत्र उत्तरापथ के नाम मे नामित था। विंध्य पर्वत के दक्षिण में था दक्षिणापथ और उससे दक्षिण की ओर द्रमिल देश अवस्थित था। वही द्रमिल देश अनेक राज्यों के सम्मेलन से एक राष्ट्रसंघ के रूप में लगभग तेरह सौ वर्ष पूर्व ही संगठित हुआ था [ई.पू. १३००], हाथीगुंफा शिलालेख से इसकी भी सूचना मिलती है। कलिंग राष्ट्र भारत के पूर्वान्त में गगा से गोदावरी तक विस्तृत था और उससे संलग्न अ..ृधक [विद्याधर] राज्य पश्चिम दिशा में विंध्य पर्वत के पार्श्ववर्ती

क्षेत्र के रूप में जाना जाता था। पश्चिमांचल में नर्मदा और तापि की अववाहिका में अवस्थित था अवंतीपथ, जहाँ ई.पू. पहली सदी में सातवाहन वंश क्षमता संपन्न होकर था। पूर्व-सूचना के अनुसार सुंग-काण्व वंश के विलीन होने के कारण अंग और मगध में मित्र राजवंश, कलिंग में चेदि राजवंश और महाराष्ट्र में सातवाहन राजवंश का अभ्युदय हुआ था और सार्वभौमत्व के लिये इनमें संघर्ष अनिवार्य था। ई.पू. पहली सदी के द्वितीयार्ध में मित्र वंश के वृहस्पति, चेदि वंश के खारवेळ और सातवाहन वंश के सातकर्णी अधिक शक्तिशाली थे। इन्हीं त्रिशक्तियों के संघर्ष में खारवेळ की भूमिका अत्यंत गौरवमय थी।

हाथीगुंफा शिलालेख की चौथी पंक्ति से यह स्पष्ट रूपसे प्रमाणित होता है कि कलिंग की विशाल सेनावाहिनी चतुरंग बल से अर्थात् पदातिक, अश्वारोही, गजारोही और रथारोही सैन्यों से बनायी गयी थी। पुनश्च तेरहवीं पंक्ति से यह भी ज्ञात होता है कि उस सेना में अद्‌भुत क्रियाशील हाथी और युध्द पोत भी थे [अभूत मछरियं च हाथीनाव]। सत्रहवीं पंक्ति में खारवेळ अप्रतिहत सेनाबल के अधिकारी के रूप में वर्णित हुए हैं।

जब खारवेळ कलिंग के सिंहासनासीन हुए तब भारत के पश्चिमांचल में सातवाहन वंशी राजा सिमुक के पुत्र सातकर्णी का शासन था। यहां उल्लेखनीय है कि सातवाहन और मेघवाहन दोनों एक ही समय में भारत के पश्चिमांचल और कलिंग पर अधिकार प्राप्त होकरके दाक्षिणात्य में अपने प्रभाव विस्तार करने को तत्पर थे। उस समय सातकर्णी ने स्वयं आधुनिक महाराष्ट्र के शासक होने के बावजूद अपने को दक्षिणापथपति के रूप में घोषित किया था। अतः अपनी शक्ति और समर्थता की प्रतिष्ठा के लिये खारवेळ ने सबसे पहले सातवाहन के राज्य पर आक्रमण किया था। हाथीगुंफा शिलालेख

की चौथी पंक्ति से यह स्पष्टरूपसे प्रतिपादित होता है कि खारवेळ ने अपने राजत्व के दूसरे वर्ष ही सातकर्णी की शक्ति का भ्रूक्षेप न करते हुए "कन्हवेणा" [कृष्णावेणी] तक अग्रसर होकर असक नगरी पर आक्रमण किया था। संभवतः इस सामरिक अभियान में खारवेळ को सफलता नहीं मिली थी। और यह आद्य संघर्ष अमीमांसित रहा था। इस युद्ध की परिणति के संदर्भ में हाथीगुंफा या अन्य किसी सातवाहन वंशीय शिलालेख से कोई भी जानकारी मिलती नहीं है। पर चुल्ल कलिंग जातक में इस संदर्भ में एक चित्ताकर्षक वर्णन है। उस वर्णन के अनुसार राजा कालिंग युद्ध में पराजित होकर अपनी चार सुंदर राजकुमारियों को अस्मक के राजा अरूण को प्रदान किया था। इसी के आधार पर वेणीमाधव बडुआ ने कहा है कि उस युद्ध में खारवेळ पराजित हुए थे। यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि जातक की इस कथा की कोई ऐतिहासिक सत्यता नही है। क्यों कि हाथीगुंफा शिलालेख से यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित होता है कि उस सामरिक अभियान के समय खारवेळ की आयु मात्र छब्बीस साल की थी। उस अवस्था में चार चार युवा राजकुमारियों का जन्मदाता बनकर किसी विजयी राजा को अर्पित करने की कल्पना तक असंभव है। इसके पश्चात खारवेळ ने विद्याधर क्षेत्र के योद्धाओं को संगठित किया। अशोक के स्वतंत्र कलिंग अभिलेख में उल्लिखित आटविक राज्य और हाथीगुंफा शिलालेख में उल्लिखित विद्याधर राज्य एक है। सम्राट् अशोक ने कलिंग युद्ध के समय उन्हीं आटविक सेना की असीम शक्ति और वीरता के परिचय पाकर कलिंग पर विजय प्राप्त होने के बावजूद आटविक राज्य पर अधिकार पाने का प्रयास तक किया नहीं था। और उन्हें अविजित जाति के रूप में स्वीकार किया था। आधुनिक ओड़िशा के बलांगीर, फुलवाणी और कलाहाण्डी आदि पार्वत्य क्षेत्रों को लेकर तब विद्याधर/आटविक राज्य का संगठन हुआ था। जैन ग्रंथों से यह सूचना मिलती है कि विंध्य पर्वत के समीप अठारह विद्याधर

निवास अवस्थित थे। और उस क्षेत्र में साठ नगरों की प्रतिष्ठा हुई थी। खारवेळ के परवर्ती कालके अभिलेखों से उन अष्टादश विद्याधर राज्यों की अवस्थिति की जानकारी प्राप्त होती है। अति प्राचीन कालसे वह कलिंग के लिये सेना संग्रह की भूमि थी। कुरूक्षेत्र युद्ध में कलिंग की जिस शवर और पुलिंद सेना ने अपने असीम वीरत्व का प्रदर्शन किया था वे यही विद्याधर/आटविक क्षेत्र के हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है। खारवेळ ने भी अपने अभिलेख में विद्याधर क्षेत्र को "अहत पूवं" अर्थात पहले कभी पराजित न होनेवाला क्षेत्र के रूप में उल्लेख किया है।

विद्याधर राज्य के सैन्यबल को संगठित करके खारवेळ ने अपने राजत्व के चौथे वर्ष सातवाहन राज्य के विरूद्ध द्वितीय बार युद्ध के लिये प्रस्थान किया था। इसके पहले ही राजा सातकर्णी की मृत्यु हो चुकी थी और उनके दोनों पुत्र, वेदश्री और शक्तिश्री के नाबालिग होने के कारण विधवा रानी नयानिका पर राज्य का शासन भार न्यस्त था। रानी नयानिका ने खारवेळ के आक्रमण को प्रतिहत करने के लिये अपने दोनों सामंत, रथिक और भोजक क्षेत्र के शासकों को भेजा। पर खारवेळ से पराजय स्वीकार करते हुए छत्र परिहार कर, मुकुटविहीन हो मणिरत्नों सहित उनकी पद-वंदना को वाध्य हुए। सातवाहन राजवंश की शक्ति खर्वित हुई एवं फलस्वरूप कलिंग का राजनैतिक प्रभुत्व पूर्व से पश्चिम पयोधि तक विस्तारित हुआ।

इस विजय के उपरांत खारवेळ तीन वर्षों तक सामरिक अभियान से विरत हो कर जन-कल्याणकारी कार्यों में अपने को नियोजित किया था। पर लगता है कलिंग के पारंपरिक शत्रु मगध के विरूद्ध उनकी युद्ध-प्रस्तुति तब भी जारी थी। राजत्व के आठवें वर्ष ही उन्होंने सेना लेकर उत्तराभिमुख हो मगध की वृहत्तम नगरी राजगृह

का अवरोध किया था। राजगृह की प्रतिरक्षा के लिये गोरथगिरि पर निर्मित गोरथ गिरि दुर्ग कलिंग सैन्यों के आक्रमण से विध्वंसित होने की सूचना हमें हाथीगुंफा शिलोलख [पं.७, ८] से प्राप्त होती है। उक्त शिलालेख में मगध का नामोल्लेख नहीं है फिरभी गोरथगिरि नाम के होने के कारण यह स्थान मगध की राजधानी के रूप में ही जाना जाएगा। क्यों कि मगध की राजधानी के, समीप ही गोरथगिरि था, यह महाभारत के एक वर्णन से स्पष्ट हो जाता है। जरासंध वध के लिए श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीम ने मगध की यात्रा की थी। उन्होंने गोरथगिरि पर खड़े होकर मगध की राजधानी को देखा था :

ते शब्द गोधनाकीर्णमम्बुमन्तं शुभद्रुमम्।
गोरथगिरिमासद्य ददशुर्मागिधं पुरम्।
[सभा. २०/३०]

अर्थात सदा गोधन से भरेपूरे, जलसे परिपूर्ण तथा सुंदर वृक्षों से सुशोभित गोरथ पर्वत पर पहुंच कर उन्होंने मगध की राजधानी को देखा।

आधुनिक बराबर पर्वत को उपरोक्त गोरथगिरि के साथ संतोषजनक रूपसे परिचिन्हित किया गया है। यहाँ लोमश महर्षि और सुदामा गुफा के साथ साथ सम्राट् अशोक का एक अभिलेख भी है। इनके अतिरिक्त, ब्राह्मी लिपि में खोदित दो छोटे छोटे अभिलेख भी हैं। पहला अभिलेख अशोककालीन ब्राह्मी में "गौरथ गिरि" और दूसरा परवर्ती ब्राह्मी लिपि में "गौरथगिरि" के रूपमें उत्कीर्णित है। द्वितीय अभिलेख की लिपि और खारवेळ के हाथीगुंफा अभिलेख की लिपि में समानता के आधार पर बेनर्जी महोदय ने इसे खारवेळ के सामरिक अभियान के समय साथ आए किसी व्यक्ति के द्वारा उत्कीर्णित अभिलेख बताया है। हाथीगुंफा शिलोलख में भी गोरथ

गिरि "गोरध गिरि" के नाम से खोदित हुआ है, यह उल्लेखनीय है।

कलिंग सेना के आक्रमण के समय जब मगध राजगृह के अधिवासी संतप्त थे तब यवनों ने मथुरा पर अधिकार पा लिया था और वे मगध की ओर बढने की सामरिक तैयारियां कर रहे थे। पर खारवेळ के विजय अभियान के समाचार पाकर ग्रीक राजा [नाम अज्ञात है] आतंकित होकर मथुरा की ओर पलायन कर गये। खारवेळ ने मगध के राजगृह पर अधिकार से जैनक्षेत्र मधुरा को यवनों के अधिकार से मुक्त करना अत्यावश्यक माना और राजगृह छोड़ कर मथुरा के लिये प्रस्थान किया। कलिंग सेनाने यवनों को विताडित किया अैर तत्कालीन जैनक्षेत्र मथुरा को खारवेळ के द्वारा सुरक्षा मिली। उपरोक्त सामरिक अभियान के कारण न केवल खारवेल की अजेय शक्ति और समर्थता परिप्रकाशित होती है, अपितु धर्मरक्षा के प्रति उनका प्रगाढ अनुराग भी प्रतिविंबित होता है। इससे उन्हें ऐतिहासिक महनीयता भी प्राप्त हुई है। कलिंग प्रत्यावर्तन के समय वे अपने साथ मथुरा से जैनधर्म के पवित्र वृक्ष कल्पवट की एक शाखा को साथ लाये थे। संभवतः वही जैनतीर्थ मथुरा को यवनों से मुक्त करने का महत्वपूर्ण धार्मिक निदर्शन था। वह पल्लवपूर्ण पवित्र शाखा को चतुरंग सेना की विशाल शोभायात्रा में राजधानी कलिंग नगरी को लायी गयी थी। राजधानी के प्रत्येक घरों में विजयलब्ध धन का वितरण हुआ था और राजकीय उत्सव मनाया गया था। उसी विजय की स्मारकी के रूप में खारवेळ ने अपने राजत्व के नौवें वर्ष में कलिंग नगरी में महाविजय प्रासाद का निर्माण किया था। उस निर्माण कार्य के लिये अड़तीस लाख मुद्राओं का व्यय हुआ था।

राजत्व के दसवें वर्ष में खारवेळ ने फिर एक बार उत्तरभारत [हाथीगुम्फा अभिलेख में "भरधवस" उल्लिखित हुआ है] की ओर

सामरिक यात्रा की और अनेक राजाओं को परास्त किया। अतुल धन रत्नों के साथ राजत्व के ग्यारहवें वर्ष में कलिंग को लौटे। हाथीगुंफा शिलालेख में पराजित राजाओं के नाम नहीं है, केवल पराजित और पलायमान राजाओं से मणि रत्न लाभ का वर्णन है। अतः इस परिप्रेक्षी में पराजित राजाओं के सही विवरण प्रदान करना संभव नहीं है।

उसी एकादशवें वर्ष दक्षिण में स्थित द्रमिल राष्ट्र संघ के साथ भीषण युद्ध का प्रारंभ हो चुका था। वर्णित राष्ट्रसंघ चोल, पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र और ताम्रपर्णी [सिंहल] के राजाओं को लेकर खारवेळ के समय से तेरहसौ वर्ष पूर्व संगठित हो दीर्घकाल से एक अजेय शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित होकर था। नंदराजा महापद्म नंद या मौर्य राजा चंद्रगुप्त और अशोक ने भी इस संघ पर विजय प्राप्त नहीं कर सके थे। यह युद्ध दोनों जल और स्थल भागों में हुआ था। हाथीगुंफा शिलोलख [पं.१३] से यह सूचना मिलती है कि इस युद्ध में खारवेळ को असंख्य अद्भुत क्रियाशील हाथी और युद्ध पोत खोने पड़े। पर अंत में उन्हेंही विजयश्री प्राप्त हुई और पाड्य राजा [संभवतः तामिल संघ के प्रमुख] ने खारवेळ को अनेक मणि माणिक्य उपहार स्वरूप प्रदान करके अधीनता स्वीकार किया था। इसीसे तामिल संघ का अवसान हुआ।

द्रामिल युद्ध के अवसान के पश्चात खारवेळ ने पुनर्वार उत्तर भारत की ओर युद्ध यात्रा की। राजत्व के बारहवें वर्ष में उन्होंने एक लाख की सेना लेकर गांगेय पठार अतिक्रमण करके उत्तरापथ तक अग्रसर हुए थे। फलस्वरूप उत्तरापथ के अनेक शासक संत्रस्त हुए। उस अभियान के समय खारवेळ ने मगध राज्य में गंगा नदी के तट पर असंख्य हस्ती और अश्वों के साथ शिविर की स्थापना की थी। उन हस्तियों को गंगा में जलपान करते हुए देख कर मगधवासियों के मन में अपार भय संचारित हुआ था। बाध्य होकर

अंग और मगध के राजा वृहस्पतिमित्र [वहसतिमित] ने पराजय स्वीकार किया था। इस विजय के द्वारा कलिंग को अपनी दो बार की पूर्व पराजय के प्रतिशोध की संतुष्टि मिली थी। खारवेळ के तीन सौ वर्ष पूर्व महापद्म नंद ने कलिंग पर आक्रमण करके कलिंग से धनरत्नों के सहित जिन प्रतिमा को भी बलपूर्वक मगध ले आए थे। मगध विजय के पश्चात खारवेळ ने कलिंग जिन प्रतिमा के साथ अपार धन संपदा और गौरव लेकर कलिंग आए। मगध के उस पराक्रमी शासक की शोचनीय पराजय से खारवेळ की असीम शक्ति और समर कौशल का परिचय मिलता है। खारवेळ के द्वारा कलिंग का सम्मान अभिवृद्ध होकर आकुमारी हिमाचल सर्वत्र प्रसरित हुआ था। खारवेळ की प्रथम महिषी ने अपने मंचपुरी गुंफा अभिलेख में उन्हें यथार्थतः चक्रवर्ती के रूपमें अभिहित किया है।

अभिलेखीय विवरणों के साथ -साथ उदयगिरि के राणीगुम्फा में खोदित खारवेळ के सफल सामरिक अभियान की चित्रावली के द्वारा भी उनका सामर्थ्य प्रदर्शित हुआ है। राणीगुंफा के निम्नांश के सम्मुख भाग के चार प्रकोष्ठों के शीर्षदेश पर ये दीर्घ चित्रावली खोदित हुई हैं। इन्हें विश्लेषित करते हुए इतिहासकार डॉ नवीन कुमार साहू बताते हैं: (चि.क्र.-४क-ख)

''चित्रावली के प्रारंभ में कलिंग सेना राजधानी कलिंग नगरी के राजपथ पर युद्ध के लिये जारहे हैं और अट्टालिकाओं पर, बरामदा तथा गवाक्षों में खड़े होकर जनता द्वारा शुभेच्छार्पण के दृश्य अंकित है। चित्रों के अनेकांश अब संपूर्ण ध्वंस हो चुके हैं। फिरभी जो कुछेक अविकृत अवस्था में हैं उनसे सम्राट के द्वादश वर्षों की दिग्विजय यात्रा की जानकारी प्राप्त होती है। जिसमें किसी राजा के नतजानु होकर खारवेळ की पद-वंदना करते दिखाया गया है-वह मगधराज वृहस्पति मित्र का आत्मसमर्पण का चित्र है। उसमें राजछत्र शोभित सम्राट खारवेळ हैं, उन्हीं के आगे नतजानु होकर प्रणिपात करते हुए मगधराज के शिरस्त्राण नहीं है। समीप

ही उनका सुसज्जित अश्व है तथा अश्व के पास खड़े अनुचरों को भी हाथ जोड कर अभिवादन करते हुए दिखाया गया है। श्रीमती देवला मित्र ने इसे किसी यवन नरपति का आत्म समर्पण का चित्र बताया है। पर हाथीगुम्फा अभिलेख वर्णित वृहस्पति मित्र का आत्म समर्पण की वर्णना के साथ इस चित्र की अधिकतर समानता है। यह सुनिश्चित है कि कलिंग शिल्पी ने किसी ग्रीक राजा की पराजय के चित्र से मगध राज के आत्म समर्पण के चित्र को अधिक गुरूत्वपूर्ण और गौरवमय माना है। चित्रावली के शीषांसमें कलिंग की विजयी सेना का राजधानी को प्रत्यावर्तन के दृश्य अंकित है। लगता है कलिंग के नागरिकों के द्वारा विजयी सम्राट् के स्वागत अभिनंदन के लिये विपुल आयोजन हुआ था। महिलाएं मस्तकों पर पूर्ण कुम्भधारण कर कतारों में खड़ी हैं और एक-एक कर सम्राट् के पद-प्रक्षालन कर रही हैं। खारवेळ के अंतिम [?] युद्धयात्रा से प्रत्यावर्तन के समय कलिंग जनता के द्वारा अभिनंदन के यह दृश्य अत्यंत सुंदर है।

धर्मनीति

खारवेळ मात्र एक योध्दा या राज्यजयी चक्रवर्ती सम्राट नहीं थे। उन्होंने अपनी उदार धर्मनीति और आध्यात्मिकता के लिये भी इतिहास में एक विशेष स्थानाधिकार किया है। खारवेळ का जन्म एक जैन परिवार में हुआ था। उनके पूर्वज परंपरानुक्रम से जैनी थे। अशोक की भांति खारवेळ ने नये धर्म की दीक्षा नहीं ली थी। वे जन्मत· जैनी थे। अतः जैन धर्म का गौरववर्धन उनके लिये स्वाभाविक कर्तव्य था।

कलिंग का प्रथम ज्ञात संगठित धर्म था जैन धर्म। कलिंग में जैनधर्मावलम्बी राजाओं में संभवत. आद्य राजा थे करकण्ड [करण्ड]। वे त्रयोविंशतम तीर्थन्कर पार्श्वनाथ के द्वारा प्रवर्तित चतुर्याम जैन धर्म

से दीक्षित हुए थे। कुम्भकार जातक की वर्णनानुसार करकण्ड, पांचाल में दुम्मुख, गांधार में नगजि और विदेह में राजा निमि के समसामयिक थे। जैनग्रंथ उत्तराध्ययन सूत्र में इसका उल्लेख है कि इन्होंने राजाओं में वृषभ और जैन धर्म में दीक्षित होकर सिंहासन का त्याग करके श्रमण के रूप में कालातिपात किया था। इनका राजत्व काल ई.पू. आठवीं सदी होगी, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है। क्यों कि पार्श्वनाथ ई.पू.७१७ में निर्वाण प्राप्त हुए। नगेंद्रनाथ बसु ने जैन ग्रंथ "क्षेत्र समास" के तथ्यों के आधार पर कहा है कि पार्श्वनाथ ' स्वयं ताम्रलिप्ति और कोपकटक को आकर धर्म का प्रचार किया था। ताम्रलिप्ति को आधुनिक मिदनापुर जिला के तामलुक और कोपकटक को ओडिशा के बालेश्वर जिला के कुपारी के साथ श्री वसु ने परिचिन्हित किया है। करकण्ड अपने वैभव, धर्म-चेतना और सत्ज्ञान के कारण जैनियों के द्वारा राजश्री और बौद्धों के द्वारा पच्चेक-बुद्ध के नामसे अभिहित हुए हैं। खण्डगिरि के सर्पगुम्फा में अनंतलांच्छन देख कर विद्वान इसे पार्श्वनाथ के उद्देश्य से उत्सर्गीकृत बतलाते हैं। स्थूलतः यह कहा जा सकता है कि पार्श्वनाथ कलिंग के धार्मिक जीवन के साथ घनिष्ट रूप से जुड़े हुए थे और राजा करकण्ड के समय से कलिंग में जैन धर्म की सुदृढ़ भित्ति भूमि की प्रतिष्ठा हो चुकी थी।

करकण्ड के बाद में भी पार्श्वनाथ के द्वारा प्रवर्तित चतुर्याम जैन धर्म ने कलिंग को पूर्ण रूपसे प्रभावित कर रखा था। जैन मुनि सरभंग का विहार गोदावरी के तट पर अवस्थित होकर था। सरभंग जातक से प्रतिपादित होता है कि, कलिंग के राजा कालिंग, अस्सक के राजा अट्ठक और विदर्भ के राजा भीमरथ उनके राजकीय शिष्य थे। इन्हीं वर्णनों से महावीर के पूर्ववर्ती काल के कलिंग में जैनधर्म के प्रभावशाली प्रवाह का स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

"आवश्यक सूत्र" तथा आचार्य हरिभद्र कृत टीका और "जैन हरिवंश" में यह वर्णित हुआ है कि स्वयं महावीर ने कलिंग आकर

अपने द्वारा प्रवर्तित नूतन पंचयाम जैन धर्म का प्रचार किया था। जैन ग्रंथों के इन संदर्भों को हाथीगुम्फा शिलोलख [पं.१४] के विवरणों के अनुसार भी समर्थन प्राप्त होता है। प्राचीन काल से उदयगिरि खण्डगिरि की प्रसिद्धि कुमारी पर्वत के रूप में थी। जैन धर्म के अंतिम तीर्थङ्कर इसी कुमारी पर्वत पर से कलिंगवासियों को जैनधर्म की विजय वाणी सुनायी थी [सुपवत विजय चके कुमारी पवते]।

खारवेळ के समय कलिंग में जिस भांति जैन धर्म का विकास हुआ था उसके पूर्व या परवर्ती काल में वैसा हो नहीं पाया। हाथीगुम्फा अभिलेख से खारवेळ के धार्मिक अवबोध का स्पष्ट चित्र मिलता है। प्रथम पंक्ति ही में अर्हत और सिद्धों के प्रति प्रणत होना ही महत्वपूर्ण है :

नमो अरहंतानं [।।] णमो सवसिधानं [।।]

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि परवर्ती कालमें जैन दार्शनिक भद्रबाहु के द्वारा रचित "कल्पसूत्र" नामक ग्रंथ के प्रारंभ में भी इसी तरह की अभिवादनात्मक अभिव्यक्ति है:

"णमो अरिहंताणम्, णमो सिधाणम् [।।]"

हाथीगुम्फा अभिलेख में वध्य मंगल, स्वस्तिक, नंदिपद, और वृक्षचैत्य आदि लांच्छन अंकित हुए हैं, जैन धर्म में ये माने हुए शुभ प्रतीक हैं। पुनश्च अनंतगुम्फा में भी जैन धर्म की सांकेतिक चिन्हों की पूजा हुआ करती थी। गुफा की भीतरी दीवार पर सात सांकेतिक चित्र एक ही पंक्ति में खोदित हुई हैं- मध्य भाग में नंदिपद, तथा उसके दोनों पार्श्वं में वृक्षचैत्य, श्रीवत्स और स्वस्तिक अंकित हुए हैं।

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि खारवेळ के युद्धाभियान जैनधर्म की सुरक्षा और संस्थापना के अभिप्राय से हुए थे। राजत्व के आठवें वर्ष में उन्होंने जैन क्षेत्र मथुरा से यवनों को विताडित किया था। मथुरा विजय के पश्चात उन्होंने वहां से

कल्पवृक्ष की एक पल्लव-शोभित शाखा सम्मान सहित अपनी राजधानी को लाये थे। यह कल्पवृक्ष आदिजिन ऋषभनाथ का प्रतीक था। उसी अवसर पर उन्होंने कलिंग नगरी में महाविजय प्रासाद का निर्माण किया था।

खारवेळ के पूर्व ही कलिंग का पिथुण्ड नामक एक स्थानने जैनक्षेत्र के रूपमें प्रसिध्दि पायी थी। पुनश्च यह भी हाथीगुम्फा शिलालेख में उल्लिखित है कि यह स्थान कलिंग के राजाओं का एक प्रमुख अधिष्ठान था। उत्तराध्ययन सूत्र से ज्ञात होता है कि पिहुण्ड [अभिलेख का पिथुड:पिथुण्ड] कलिंग का एक प्रख्यात बंदरगाह था; तथा महावीर के समय इसे एक प्रसिद्ध जैन क्षेत्र माना जाता था। किसी कारणवश: यह क्षेत्र परवर्ती कालमें परित्यक्त होगया। हाथीगुम्फा अभिलेख में यह विवरण है कि खारवेल ने पिथुण्ड का पुनरूद्धार के लिये गर्दभ-योजित लांगल का उपयोग किया था। बैल या सांड़के बदले गदहे का उपयोग होना धार्मिक दृष्टि से तात्पर्यपूर्ण है। क्यों कि बैल या साँड़ आदि जिन-ऋषभनाथ के लांछन माने जाते हैं। लगता है पिथुण्ड आदिजिन का पवित्र पीठ था अतः खारवेळ ने उनके लांछन स्वरूप बैल या साँढों को उपयोग में न लाकर गदहे से काम चलाया था। पिथुण्ड नगरी का पुनरूद्धार कार्य एक ओर चलता रहा था तब दूसरी ओर उत्तरापथ के लिये अभियान की तैयारियां भी होती रही थी। खारवेळ ने अपने राजत्व के बारहवें वर्ष में मगध के राजा वृहस्पति मित्र को परास्त किया और कालिङ्ग- जिन मूर्त्ति लौटा लाए। हाथीगुम्फा शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि खारवेळ के तीनसौ वर्ष पूर्व मगध के राजा महापद्म नंद ने कालिङ्ग- जिन मूर्त्ति का अपहरण कर जिस तरह कलिङ्ग के धर्मक्षेत्र पर आघात किया था, यह एक तरह से उसी का प्रतिशोध था जिससे कलिंग के गौरव और मान सम्मान की रक्षा करके खारवेळ चिर स्मरणीय हुए हैं। डॉ. काशीप्रसाद जयस्वाल और राखाल दास बेनर्जी के अनुसार कालिङ्ग जिन मूर्ति दशम तीर्थङ्कर

शीतलनाथ की प्रतिमूर्ति थी, पर डॉ.नवीन कुमार साहू के यथार्थ मतानुसार वह ऋषभनाथ की प्रतिमूर्ति थी। कालिङ्गजिन नाम करण की दृष्टि से डॉ. यज्ञ कुमार साहु का कहना है कि कालिंगजिन कलिंग के आराध्य देव थे, ई.पू. चौथीसदी में जैनधर्म कलिंग का राष्ट्रधर्म था। खारवेळ के द्वारा राजत्व के एकादशवें वर्ष में पिथुंड का पुनरुद्धार कार्य और द्वादशवें वर्ष में मगध पर विजय पाकर कालिङ्गजिन को लौटा कर पिथुंड में फिरसे प्रतिष्ठित करना ऐतिहासिक विचार से तात्पर्यपूर्ण है। इससे यही प्रमाणित होता है कि खारवेळ ने मगध अभियान के पूर्व ही कालिंग-जिन को लाकर उनके पूर्व अधिष्ठान पिथुंड में फिर से प्रतिष्ठित करने की योजना बनायी थी। अत: द्वादश वर्ष का वह युद्धाभियान भी जैनधर्म की सुरक्षा और संस्थापना के उद्देश्य से हुआ था, यह नि:संदेह कहा जा सकता है। पिथुंड में कालिंगजिन प्रतिमा की प्रतिष्ठा के दृश्य भी मंचपुरी गुम्फा के निचले भाग पर उत्कीर्णित होकर है। दु:ख की बात है कि वह मूर्ति के अधिकांश भाग टूट चुके हैं। केवल मात्र मूर्ति के सम्मुख दण्डायमान राजपुरोहित ही अर्चना की मुद्रा में स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। पुरोहित के पीछे स्वयं खारवेळ, राजमहिषी और अंत में राजकुमार खड़े हुए हाथ जोड़ कर भक्ति और सम्मान प्रदर्शित करते दिखाई देते हैं। (चि.क्र.पु-५)

खारवेळ हाथीगुम्फा अभिलेख की चतुर्दश पंक्ति में जैन धर्म के सर्वश्रेष्ठ पृष्ठपोषक के रूपमें वर्णित हुए हैं। इसमें यह विवरण भी है कि जिस कुमारी पर्वत पर भगवान महावीर ने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया था वहां पूजानुरत उपासक खारवेळ ने अपने राजत्व के त्रयोदश वर्ष में श्वेतांबर जैनियों को और यापनीय नामक दिगंबर अर्हतों को राजपृष्ठपोषकता अर्पणपूर्वक उनके आवास के लिये अनेक गुम्फाओं की खुदवाई की थी। प्राचीन काल में यापनीयक दिगंबर अर्हत उलग्न रहते थे। मस्तक को मयूर पंख से सजाते थे और आहार के लिये कुछेक रीति-नीतियों का पालन करते थे। द्वितीय

महिषी सिंहपथ राणी के अनुरोध से उन्होंने विभिन्न स्थानों से आगत श्रमण, यति, तापस, ऋषि और संघायनों के आश्रय के लिये अर्हतों के गिरिगृह के समीप एक विशाल विश्रामागार का भी निर्माण किया था। दूरदूर से आनीत पंचात्रिश लक्ष प्रस्तर फलकों से उस अनुलनीय सुरम्य प्रासाद का निर्माण हुआ था। उसके फर्श को पाटल रंग से रंगाया गया था। उसके वैदुर्य खचित खम्भें थे। प्रासाद के निर्माण के लिये एक लाख पांच सहस्र मुद्राएँ व्ययित हुई थी, यह सूचना हमें अभिलेख ही से प्राप्त हो जाती है। खारवेळ की प्रथम महिषी, राजकुमारों और विभिन्न पदाधिकारियों की जैन धर्म के प्रति प्रगाढ अनुरक्ति और पृष्ठपोषकता भी उदयगिरि-खण्डगिरि में उत्कीर्णित विभिन्न क्षुद्राभिलेखों में है, जिसका पाठोध्दार और व्याख्या इस पुस्तक में परिशिष्ट के रूपमें हैं।

भारत के धार्मिक और सांस्कृतिक विकाश क्षेत्रमें भी खारवेळ की उदार धर्मनीति की भूमिका गुरूत्वपूर्ण है। ब्राम्हण्य धर्म के प्रति उनकी पृष्ठपोषकता का उदाहरण भी है। हाथीगुम्फा अभिलेख की पं. ९ के अनुसार मगध विजय के पश्चात विजयलव्ध धन को ब्राम्हण्य धर्मी ऋषि तापसों के लिये भी प्रबंध था। वस्तुत: वह विश्रामागार सर्वधर्म समन्वय का प्रतीक था। खारवेळ का वौद्ध धर्म के प्रति भी अनुराग था। क्यों कि वौद्धों में जो धार्मिक विप्लव का सूत्रपात हुआ था, खारवेळ के समसामयिक कलिंग की भूमि पर ही उसे सफल परिणाम प्राप्त हुआ था।

कलिंग युद्ध की भाँति एक महायुद्ध के परिणाम स्वरूप अशोक जैसे सुविख्यात सम्राट्ने बौद्ध धर्म को अपनाया था और चण्डाशोक से धर्माशोक बने। यह कलिंग भूमि पर बौद्ध धर्म की लोकप्रियता का प्रमाण है। अशोक के बौद्ध धर्म-दीक्षित होने के कुछ ही वर्षों में वौद्ध धर्म की लोकप्रियता की गति ऐसी प्रखर हुई कि कुछेक वर्षो में कश्मीर से सिंहल और ग्रीस से ब्रम्हदेश तक परिव्याप्त

हो गयी। उस समय पृथ्वी की इतनी ही जानकारी थी। सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र धर्म-संगठक के रूपमे ई.पू.२५० में सिंहल पहुंचे। वहां उन्होंने राजा देवप्रियतिष्य से यथार्थ ही कहा था- "समस्त जम्बुद्वीप पीली पोशाक में उद्‌भासित हो उठा है"

बौद्ध परंपरा से ज्ञात होता है कि अशोक अपने जीवन के उत्तरार्ध में बौद्ध धर्म की पृष्ठपोषकता के लिये अत्यंत आग्रही थे। बौद्ध संघ और भिक्षुओं के प्रति उनकी बदान्यता की अधिकता के कारण धीरे-धीरे मगध का राज कोश शून्य होता गया।

ब्राम्हण सेनापति पुष्यमित्र सुंग ने मगध में मौर्य वंश के अंतिम बौद्ध सम्राट की हत्या स्वच्छ दिवालोक ही में की और मगध सिंहासनासीन हुए। पुष्यमित्र ब्राम्हण धर्म की प्रतिष्ठा और प्रसार के लिए तत्पर थे। उनके प्रतिहिंसापरायण हो बौद्ध दलन नीति अपनाने के कारण अनेक बौद्ध सन्यासियों ने प्राण विसर्जन अथवा अन्यत्र पलायन कर गये। बौद्ध धर्म ने थोड़े ही समय में जो सम्मान और प्रतिष्ठा पायी थी, उसे अक्षुण्ण रख पाने के प्रयास से बौद्ध नेतृवर्ग अस्थिर हो उठे। सम्राट अशोक से लेकर खारवेळ तक दीर्घ दो शताब्दियों की अवधि ब्राम्हण्य और बौद्ध-धर्मी के मध्यप्रति द्वंद्विता की रही। बौद्ध धर्म को अधिक लोकप्रिय बनाने के हेतु नूतन नीतियों के प्रणयन के लिये उसके नेतृवर्ग चिंतित हुए। अंत में ई.पू. प्रथम शताब्दी में सर्वस्तिवादी बौध्दों के द्वारा प्रज्ञा-पारमिता साहित्य और दर्शन की पहली नींव कलिंग की धरती पर ही पड़ी थी। इसो साहित्य की प्राचीनतम ग्रंथ-रचना है अष्टसहस्रिका प्रज्ञापारमिता, जिसकी रचना कलिङ्ग में ही हुई थी। इसीके द्वारा केवल भारत ही में नहीं वरन सारे एसिया महादेश में एक नूतन सांस्कृतिक युग का प्रारम्भ हुआ। डॉ.साहू का कहना है- बौध्द जगत में जो अनेक समय तक असंभव था वही संभव हो पाया खारवेळ के उदारनीति- शासति कलिंग में।"

हाथीगुम्फा अभिलेख की सप्तदश पंक्ति में खारवेळ ने अपने को सभी धर्मों के मूर्ति पूजक और समस्त देवायतनों के संस्कारक के रूप में किया है जिसकी यथार्थता इस भांति उनकी कार्यावली से स्पष्ट रूपसे प्रतिपादित हो जाती है।

खारवेळ के परवर्ती ओडिशा में जैन धर्म

अब तक खारवेळ के परवर्त्ती वंशधरों के विस्तृत विवरण प्राप्त हुए नहीं हैं। उनके राजत्व काल में कलिंग में जैनधर्म की क्या स्थिति थी, उस संदर्भ में भी कोई तर्क सम्मत विस्तृत प्रमाण या प्रत्नतात्त्विक विवरण अभी तक मिला नहीं है। खारवेळ के पश्चात ओडिशा में जैनधर्मी पारंपरिक अनुष्ठानों के बारे में भी कोई विशेष जानकारी नहीं है। फिरभी, जो उपलब्ध है, उनमें से एक का आधार है जैन-ग्रंथ ''अभिधान राजेंद्र''। इस ग्रंथ के अनुसार तोषली विषय के सेलपुर में 'ऋषि तड़ाग' नाम से जैनियोंका एक पवित्र सरोवर था जहाँ हर वर्ष एक आठ दिनों का उत्सव समारोह हुआ करता था:

''आदेसो सेलपुरे आदाणट्ठहिया हिआय महिमाए
तोसलिविसए विण्णवणठातह होति गमणं वा।
सेलपुरे इसित लागम्म होति अट्ठाहिया महामहिमा
कोंडलमेत्त पभासे अववुय पाइण वाहम्मि॥

सरस्वती नदी के साथ मिली प्राचीनवाह नदी के तट पर आनंदपुर के वासियों के द्वारा वह उत्सव मनाया जाता था, उस ग्रंथ में इसका भी उल्लेख हुआ है। स्वर्गीय पंडित वानाम्बर आचार्य ने सरस्वती नदी को [ब्रह्मा-तनया] ब्राह्मणी नदी और प्राचीनवाह नदी को वैतरणी माना है। आंनदपुर को आधुनिक केंदुझर जिला के आंनदपुर के रूप में चिन्हित किया गया है। आनंदपुर के निकटस्थ पोडसिंगाड़ि, बइदाखिआ, सोसे आदि स्थलों से जिन जैन अवशेषों

का आविष्कार हुआ है उससे उस क्षेत्र में जैन संस्कृति की प्राचीनता स्पष्ट रुपसे प्रतिपादित हो जाती है यह महत्वपूर्ण है। ई. छठी-सातवीं सदियों में आनन्दपुर क्षेत्र में जैन धर्म लोकप्रिय था। मध्य युगमें उसे जैन संस्कृति और कला का एक उन्नत क्षेत्र के रूपमें प्रख्याति मिल चुकी थी।

ई. सातवी-आठवी सादियों में कंगोद राज्य ओडिशा के समुद्र तटवर्ती प्रदेश में महानदी से महेंद्रगिरि तक विस्तृत होकर था। उस समय कंगोद में जैनधर्मावलम्बी थे और शैलोद्भव वंशी राजा द्वितीय धर्मराज की रानी भगवती श्री कल्याण देवी भी जैन धर्म की पृष्ठपोषक थीं। वाणपुर ताम्रशासन के वर्णनानुसार रानी ने अर्हदाचार्य नासिचंद्र के शिष्य एकशाट प्रबुद्धचंद्र को जैन धर्म की अभिवृद्धि के लिए भूमि का दान दिया था। राजा द्वितीय धर्म राज ब्राह्मण धर्म के समर्थक थे और स्वयं को परममाहेश्वर के नाम से प्रज्ञापित करेत थे। ब्राह्मण और शैवधर्म के प्रति अनुगत राजा की रानी कल्याण देवी का जैनधर्म की पृष्ठपोषक होना भी गुरुत्वपूर्ण है। प्रबुद्धचंद्र की "एकशाट" पदवी से प्रतीत होता है कि वे एक ही वस्त्र पहना करते थे। शायद उस समय कंगोद राज्य में सभी धर्मों की सहावस्थिति और सहयोग के कारण ही द्रुततर सांस्कृतिक विकास संभव हो पाया था।

मध्ययुगीन ओडिशा के इतिहास में सेमवंशी राजाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्हें ओडिशा के निर्माता के रूप में अभिहित किया गया है [Makers of Orissa]। इस वंश के राजाओं ने अपने को दान पत्रों में परम-माहेश्वर के रूप से प्रज्ञापित करके मुख्यत: शैवधर्म की पृष्ठपोषकता की थी। परंतु धर्मक्षेत्र में इनकी नीति-उदार थी। सोमवंशी राजा उद्योत केशरी की जैनधर्म के प्रति पृष्ठपोषकता का अभिलेखीय प्रमाण भी प्राप्त हुआ है [ई. १०४०-६०]। खण्डगिरि के ललाटेंदु केशरी गुंफा अभिलेख से यह ज्ञात होता

है कि अपने राजत्व के पांचवें वर्ष में राजा उद्योत केशरी ने कुमार पर्वत [खण्डगिरि] के कतिपय मंदिर और सरोवरों का जीर्णोध्दार करवाया था। वहाँ चतुर्विंश जैन तीर्थंकर की प्रतिमा के साथ-साथ श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा भी करवायी गयी थी। पूजा आराधना के लिये यशनंदि नामक एक जैन आचार्य भी वहां नियोजित हुए थे। शिलालेख की भाषा संस्कृत है फिर भी उसमें कहीं-कहीं प्राकृत शब्दों का प्रयोग हुआ है। पाठकों की जानकारी के लिये उस शिलालेख का संपूर्ण पाठ नीचे प्रदत्त है:

"उँ श्रीउद्योतकेशरी विजयराज्य सम्बत ५
श्री कुमार पव्वत स्थाने जिन्न वापि जिन्न
इसण उद्योतित तस्मिन थाने चतुर्विसति तिर्थंकर स्थापित
प्रतिष्ठा काले हरिओप जसनंदिक
****
श्री पारस्यनाथस्य कर्म्म खय:

नव मुनि गुम्फा अभिलेख इनके राजत्व के अठारहवें वर्ष में उत्कीर्णित हुआ था। आचार्य कुलचंद्र के शिष्य जैन मुनि शुभचंद्र इस गुम्फा के निर्माता थे, यह उसी अभिलेख ही से ज्ञात हो जाता है:

"उँ श्रीमदुद्योतकेशरीदेवस्य प्रवर्धमाने विजयराज्ये
संबत १८ श्रीआर्यसंघ प्रतिबद्ध ग्रहकुल विनिर्गत देशीगण
आचार्य श्री कुलचंद्रभट्टारकस्य शिष्य सुभचंद्रस्य।"

स्थूलत: इतना ही कहा जा सकता है कि ओड़िशा मे सोमवंशी राजत्व काल तक जैन धर्म को राज-पृष्ठपोषकता प्राप्त होती रही थी और ई.बारहवीं सदी के बाद किसी और राजवंश से सहायता प्राप्त होकर इस धर्म का कोई विकास हुआ हो, ज्ञात नहीं होता। ओड़िशा के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त जैन अवशेषों से अनुमान लगाया जाता है कि ब्राह्मण धर्म के साथ यह धर्म भी बना रहा था।

पर यह निश्चित रूप से स्वीकारणीय और गौरव की बात है कि, खारवेळ के पश्चात इस धर्म की पृष्ठपोषकता के लिये किसी और राजवंश के न होने के बावजुद अबभी ओड़िशा में एक विशेष संप्रदायने अपने को जैनधर्मावलंबी के रूप में अभिहित कर प्राचीन कलिंग का एक राष्ट्र धर्म को उज्जीवित कर रखा है।

खारवेळ कालीन शासन और समाज:

कौटिल्य के अर्थशास्त्र ने भारतवर्ष की शासन धारा को दीर्घ काल तक प्रभावित कर रखा था। खारवेळ की शासन-विधि पर विचार आलोचना से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि, उनके द्वारा भी अनेकांशों में अर्थशास्त्र की पद्धतियां अपनायी गयी थीं। उनके प्रशासनिक कार्यकर्ताओं का परिचय खण्डगिरि और उदयगिरि के कुछेक अभिलेखों से प्राप्त होता है।

उस समय नाकीय "महामद" की पदवी से अलंकृत हुए थे। उनकी पत्नी का नाम था बारीया। ये दोनों पति-पत्नी ने जैन अर्हतों को जमेश्वर गुंफा समर्पित किया था। मुख्यमंत्री को महामद कहा जाता था। अशोक के समय यह पदवी "महामात्र" नामसे नामित हुई थी। कुछेक अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उस समय भारतवर्ष में "कर्म सचिव" और "मति सचिव" नामसे पदस्थ राजपुरूष विभिन्न प्रांतों में नियुक्त हुए थे। खारवेळ के शासन में "मति सचिव" नहीं थे पर कर्म-विभाग के अधिकारी "कर्म सचिव" की सूचना हमें मिलती है। कर्म सचिव को उस समय "कम्म" कहा जाता था। उनके सहयोगी को "चुल कम्म" के नामसे जाना जाता था। दुर्ग, प्रासाद आदि का निर्माण, कूप, सरोवर आदि का खनन, पर्वतों में गुम्फा आदि बनाने के काम से शायद उनकी नियुक्ति हुआ करती थी। सर्पगुम्फा अभिलेख में "कम्म" और हरिदास गुम्फा अभिलेख में "चुलकम्म", ये दोनों पदवियां उल्लिखित हुई हैं। उदयगिरि व्याघ्रगुंफा

अभिलेख में "नगरअखदंस" भूमिका नाम है। उस समय नगर के विचारपति अथवा न्यायाधीश को 'नगर अरखदंस' कहा जाता था। संभवतः वे ही साम्राज्य के विचार विभाग के मुख्य माने जाते थे। अशोक के समय इस पद को "नगर वियाहलक" और अर्थशास्त्र में, "नागरिक महामात्र" के नाम से नामित किया गया है। खारवेळ के समय "पादमूलिक" एक और राजपुरुष हुआ करते थे। उस समय यही पदनामधारी राजपुरुष कलिंग के संलग्न क्षेत्रों में भी नियुक्त थे, इसकी जानकारी हमें किरारि स्तंभ अभिलेख से प्राप्त होती है। खण्डगिरि के ततुआ गुंफा अभिलेखसे यह भी ज्ञात होता है कि खारवेळ के समय कलिंग के पादमूलिक के रूप में कुसुम नामक एक व्यक्ति अवस्थापित होकर था। युद्ध और शांति दोनों समय राजा के समीप रह कर पादमूलिक दूसरे कार्यकर्ताओं में एक विशेष आसन के अधिकारी माने जाते थे। उस समय इन पदों के अतिरिक्त कलिंगके अन्य पदासीनों के बारे में हाथीगुम्फा या और किसी अभिलेखों से हमें कोई जानकारी नहीं मिलती है। फिरभी खण्डगिरि और उदयगिरि गुंफा में कुछेक अन्य कार्यकर्ताओं की मूर्तियां है, जिनके बारे में डॉ. साहू का कहना है:

"राणीगुम्फा के नीचले खण्ड में दाहिनी ओर के गुम्फाके सामने एक पादुकाविहीन, दण्ड- पाशधारी दण्डायमान दीर्घकाय व्यक्ति की मूर्ति है। निःसंदेह उसे उस समय के 'दण्डपाशिक' उपाधिधारी पुलिस कार्यकर्ता कहा जा सकता है। उस समय राजप्रासाद, विभिन्न संस्था और अधिकरणों में दौवारिकों के द्वारा किस भांति सुरक्षा कार्य का संपादन हुआ करता था उसका अनुमान उदयगिरि के राणीगुम्फा के दोनों खण्डों में, मंचपुरी गुम्फा के निचले खण्ड, जय विजय गुम्फा में तथा खण्डगिरि के ततोवा गुम्फा के निचले खण्ड में बनी अस्त्रधारी दौवारिकों की मूर्तियों से लगता है कि इनका काम पहरा देना ही था। "दौवारिकों" के काम की निगरानी 'प्रतिहारी' किया करते थे और उनके ऊपर के अधिकारी को नायक या सेना-नायक

कहा जाता था। राणीगुम्फा के उपरी हिस्से की दाहिनी और बने प्रकोष्ठ के सामने द्वारपाल के रूपमें खड़े दो राजपुरुष उन दौवारिकों से कुछ भिन्न से जान पड़ते हैं। उनके वेश-भूषण और रोब से वे दोनों साधारण प्रहरियों से उच्च-पदाधिकारी लगते हैं। उस पर वे दोनों एक ही वर्ग के लगते नहीं है। संभवतः उनमें से एक है प्रतिहारी और दूसरा नायक है। प्रतिहारी के सर पर पगड़ी है। उसने धोती बांध रखी है। लंबोदर तथा अस्त्ररहित नंगेपांव खडा है। जब की नायक [या सेना नायक] ने सलवार अचकन पहन रखा है। सर पर पगड़ी है। बूट नुमा जूता पहन रखा है। कमर में तलवार झुलाए दर्प से खड़ा है। राणीगुम्फा के निचले खण्ड के मध्य भागके प्रकोष्ठों में खारवेळ के दिग्विजय की जो चित्रावली उत्कीर्णित हुई हैं उनमें सम्राट के साथ कुछेक पदस्थ कार्यकर्ता भी हैं। सेनापति के हाथ में एक लंबी तलवार है और घोड़े पर सवार होकर, पीठ पर सैनिकों के लिये खाद्य की व्यवस्था हेतु पात्र लटकाए चलनेवाले कार्यकर्ता 'भाण्डागारिक'' कहलाते थे। सैनिकों के लिये विजय अभियान के समय खाने का प्रबंध करना उनका काम था। इनमें से अनेक अब विनष्ट हो चुके हैं पर जो भी है उसमें से उन दोनों राजपुरुषों को तथा छत्र-चामर शोभित सम्राट खारवेळ को सहज ही पहचाना जा सकता है। (चि.क्र.६)। यह सुनिश्चित है कि खारवेळ के समय इन कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त और भी अनेक पदाधिकारी रहे होंगे। पर उनके विवरण प्रदान करने के लिए आजतक कोई प्रत्नतात्त्विक प्रमाण उपलब्ध नहीं हो पाया है।

साम्राज्य में सुख और शांति की प्रतिष्ठा और संवृद्धि के लिये ही खारवेळ का शासन अभिप्रेत था इसकी स्पष्ट सूचना हमें उनके शिलालेख और शिलांकनों से प्राप्त होजाती है। हाथीगुम्फा शिलालेख के अंतिम अंश की घोषणा [भावानुवाद पं. १६-१७ द्रष्टव्य] खारवेळ के गुण और सामर्थ्य ही को उद्घोषित करती है।

खारवेळ के राजत्व के पांचवें वर्ष तक कलिङ्ग को एक शक्तिशाली और विकासशील राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठा मिल चुकी थी। अप्रतिम संवृद्धि के कारण ही उन्होंने छठे वर्ष में राज-ऐश्वर्य की प्रदर्शनी का आयोजन किया था। प्राचीन भारतवर्ष की इतिहास में इस तरह की एक प्रदर्शनी का कोई दूसरा उदाहरण नहीं है। राज्य भर में लाखों के राजस्व की छूट भी दी गयी थी।

हाथीगुम्फा अभिलेखों में अनेकत्र मुद्रा का उल्लेख है। इससे, तब मुद्राओं का प्रचलन था, निश्चित रूप से कहा जा सकता है। ओड़िशा के बलांगीर जिले में सोनपुर, शुकतेल नदी के तटवर्ती लोकापड़ा, उदयगिरि-खण्डगिरि के समीपवर्त्ती जागमरा, झारपदा, कटक में सालिपुर, गंजाम में जउगड़, केंन्दुझर में सीतावींजी, और कालाहांडी के असुरगड़ से अनेक पंच मार्कड़ रौप्य मुद्राएं मिली है। प्रत्नातात्त्विक भूखनन से भुवनेश्वर के समीप शिशुपालगड़ से भी इसी तरह की पंच-मार्कड़ [Punch Marked] मुद्राएं प्राप्त हुई हैं। इन मुद्राओं का प्रचलन प्रागमौर्य काल से इ.पांचवी सदी तक था। इन मुद्राओं के आकार, प्रकार और उन पर के लांछनों के आधार पर विद्वानों का यही मत है। खारवेळ के समसामयिक राजा सातकर्णी और वृहस्पति मित्र के नाम उनके द्वारा प्रचलित मुद्राओं में अंकित है। पर ओड़िशा से प्राप्त किसी भी मुद्रापर खारवेळ का नामांकन हुआ नहीं है। यह उल्लेखनीय है ई.पू. पहली सदी के पूर्ववर्ती किसी भी राजाने अपने द्वारा प्रचलित मुद्राओं पर अपने नामों को अंकित किया नहीं था, संभवतः इसी प्राचीन परंपरा के विचार से खारवेळ ने भी अपनी मुद्राओं पर अपना नामांकन नहीं करवाया था।

उस समय कलिंग में जन-जीवन का स्तर अति उन्नत था। हाथीगुम्फा के निचले खण्ड पर बनी कलिंगनगरी के सांकेतिक चित्र से लगता है, राजधानी में नागरिकों की सुंदर सुंदर अट्टालिकाएं थीं, दो मंजिले प्रासाद भी थे, प्रासादों के ऊपर मर्दलाकार छत

था, छत के ऊपर शिखर था और प्रायः सभी घरों के उद्यान तथा पत्थर से बनी चारदीवारियां भी थीं। वासभवनों में पृथुलाकार स्तंभ, अलिंद, तोरण, प्रशस्त बरामदा और बड़े बड़े झरोखे भी थे। (चित्र नं.७)

उदयगिरि खण्डगिरि में खोदित चित्रावलियों से उस समय के लोगों के वस्त्र, आभूषण तथा सौंदर्य-श्रृंगार के संबंध में भी धारणा स्पष्ट हो जाती है। तब नारी पुरूष दोनों अलंकारप्रिय थे। कुण्डल, कर्णफूल, कंगन, बाला स्त्री-पुरूषों के साधारण अलंकार थे। नारियां अलग से कटिमेखला, नूपुर, पदकंकण, सीमंतमणि आदि पहना करती थीं। इस पुस्तक में यथासंभव उन आभूषणों के रेखाचित्र दिए गये हैं (चित्र नं. ८-९)। नारी और पुरूष दोनों झीने वस्त्र पहना करते थे। पर दोनों के ऊर्ध्व भाग पर वस्त्राच्छादन साधारणतया नहीं रहता था। यहां तक कि नारियां भी कमर के ऊपर कोई पोशाक पहनती नहीं थीं। केवल सौंदर्य विन्यास के लिए नर्तकियां मस्तक पर अवगुंठन रखती थीं, पर वह ललाट तक नहीं, केवल जुड़े के ऊपरी भाग तक को आवृत्त कर रखता था। यदाकदा उत्सव काल में कहीं कहीं-उत्तरीय धारण के चित्र भी पाए गये हैं। पुरूष मस्तक पर पगड़ी बांधा करते थे। धनिक वर्ग उन पगड़ियों को अलंकारों से भी सजाया करते थे। उस समय गृहोपकरण तथा बर्तन आदि भी रूचिसंपन्न थे। राणीगुम्फा और गणेशगुम्फा के चित्रों में सुगठित थाल, लोटा, कलस, तथा अन्यान्य पात्रों के चित्र भी हैं। खारवेळ की राजधानी के रूप में चिन्हित भुवनेश्वर के समीप शिशुपालगड़ में प्रत्नतात्त्विक उत्खनन के समय रोम-निर्मित चित्र-शोभित मृण्मय-पात्र मिले हैं। पोण्डिचेरी के पास एरिकामेडु से भी वैसे ही मृदभाण्ड, मद्यपात्र, मद्याधार आदि आदि प्राप्त हुए हैं। इस भाँति के बर्तन और पात्र रोम से आयात हुआ करते थे। उस समय रोम के साथ कलिंग का व्यापारिक सुसंबंध बन चुका था। मद्रास म्यूज़ियम में संरक्षित रोमन मुद्राएं पूर्व भारतीय समुद्र तटवर्ती क्षेत्रों के साथ

रोम के वाणिज्य-संपर्कों की सूचना देती है। इतिहासकार प्लिनी ने लिखा है- भारतीय व्यापारी रोम् से काफी अर्थ ले लिया करते थे जिस की तुलना में बहुत ही कम पण्य सामग्री दिया करते थे। एक अज्ञात ग्रीक नाविक के द्वारा रचित [ई. ६०] 'पेरीप्लस ऑफ दी एरीथ्रीयन सी (Periplus of the Erythraen Sea) ग्रंथ में कलिंग के दक्षिण से उत्तर दिशा में क्रमशः पिथुण्ड. पलुर, गंगा और ताम्रलिप्ति बंदरगाहों से रोम साम्राज्य के साथ वाणिज्य विनिमय के वृष्टांत लिपिबद्ध होकर है। इन बंदरगाहों के जरिये सूती वस्त्र, मशाले, विभिन्न प्रकार के रंग रोम के लिए निर्यात किये जाते थे।

उस समय नारियों को सम्मानास्पद आसन प्राप्त था। खारवेल की दोनों महिषियों का उनके धार्मिक विचार पर पूर्ण प्रभाव था, जिस पर चर्चा हो चुकी है। तब नारियां स्वच्छंदता से आ-जासकती थीं। उन्हें अपने पतियों के साथ उत्सव समारोहों में भाग लेने या देखने का अवसर मिलता था। अकेली नारियां राजपथ पर अश्व व हस्ती चालन भी करती थीं। वे नृत्य संगीत आदि में प्रवीण थीं। खारवेळ के समसामयिक खोदित चित्रों से यह भी ज्ञात होता है कि मानो नृत्य, संगीत वादन आदि केवल नारियों की कलाएं मानी जाती थीं। प्राचीन काल से भारत के विभिन्न राज्यों में गणिकाओं की प्रतिष्ठा थी। प्राचीन ग्रंथों में इसके अनेक उदाहरण हैं। मध्ययुगीन ओडिशा के कई दानपत्रों से भी गणिकाओं के बारे में अनेक आकर्षक सूचनाएं मिलती है। पर खारवेळ के अभिलेख और चित्रों से इस के संबंध में कोई सूचना नहीं मिलती।

खारवेळ के अभिलेख और खोदित चित्रों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि, उस समय गुफा खनन और प्रस्तर-शिल्प का काफी विकास हुआ था। इसके अतिरिक्त, वयन, प्रसाधन सामग्री और आभूषण निर्माण आदि कार्यों में अनेक नियोजित होकर थे। वर्धकि शिल्पागारों

में रथ, गाड़ियां, नाव आदि का निर्माण होता था। खारवेळ की अभूतपूर्व सामरिक सफलता और उदयगिरि- खण्डगिरि में अंकित अस्त्र-शस्त्रों से यह भी निश्चित हो जाता है कि उस समय कलिंग में शस्त्रास्त्रों का निर्माण भी होता था।

कृषि के अतिरिक्त पशुपालन भी एक उन्नत व्यवसाय था। उन समसामयिक चित्रों में पुरूषों का हिरन, सिंह, व्याघ्रादि आखेट तथा वृषभ अश्वादि के साथ लडाई के दृश्य भी हैं। विभिन्न जानवरों और पुरूषों के साथ लड़ाई करती नारियों के चित्र भी हैं। मानों कलिंग के नर-नारियों के वीरत्व और साहस के प्रदर्शन की इच्छा से तब के कलाकारों ने ये चित्र बनाए थे।

नाट्य-कला का पृष्ठपोषक खारवेळ

हाथीगुम्फा अभिलेख में खारवेळ को गंधर्ववेद-विशारद (गंधव वेद बुधो) कहाजाना तात्पर्यपूर्ण्ण है। महाक्षत्रप राजा ने भी अपने जुनागड़ शिलालेख में (शकाब्द ७२ = ई. १५०) भी उन्हें अन्य विद्याओं के अतिरिक्त गांधर्व विद्या में निपुण बतलाया है। ई. चौथी सदी में गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त के इलाहाबाद स्तंभ अभिलेख में वर्णित है कि वे [समुद्रगुप्त] गांधर्व विद्या में पारंगत थे। उन्होंने प्रभूत ज्ञानार्जन कर वृहस्पति, तुम्बुरू, नारद सरीखे संगीत विशारदों को नीचा दिखाने में समर्थ हुए थे :

"गन्धर्ब्ब ललितै व्रींडित त्रिदशपति तुम्भुरू नारदा..."

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में खारवेळ के पूर्व अन्य किसी भी राजाने स्वयं के द्वारा उद्घोषित किसी भी अभिलेख में स्वयं को गांधर्व- विद्या-प्रवीण नहीं बताया है।

भरत मुनि के नाट्य शास्त्र [ई. प्रथम-तृतीय शताव्दी] के पहले भारत में "गांधर्व वेद" नामक एक ग्रंथ का प्रचलन था। यह निःसंदेह कहा जा सकता है। पर अब वह महान ग्रंथ अप्राप्य है।

यामलाष्टक तंत्र से ज्ञात होता है कि "गांधर्व वेद" ग्रंथ में छत्तीस हजार श्लोक थे जिसमें संगीत और नृत्य संबंधी नीति नियमों की विस्तृत वर्णना और व्याख्या थी। बाद में भरत मुनि ने इसी ग्रंथ के आधार पर संक्षेप में "नाट्यशास्त्र" की रचना की थी, ऐसा विद्वानों का अनुमान है।

चाहे जो भी हो, ई.पू. पहली सदी में इस गांधर्व वेद के साथ कलिंगवासियों का परिचय था और खारवेळ इसी से विद्याध्ययन कर विशारद बने थे। उदयगिरि- खण्डगिरि में चित्रित नृत्य भंगिमाएं शास्त्रीय अनुकृति हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

कलिंग में मौर्य शासन के पहले चौंसठ कळाओं से युक्त तौर्यत्रिक (नृत्य, संगीत, वाद्य) की एक उन्नत परंपरा की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। अशोक के राजत्व काल में इसे बंद किया गया था। हाथीगुम्फा अभिलेख की पं.१६ में इसकी सुस्पष्ट सूचना है। कलिंग में मौर्य शासन विजेताओं का शासन था। पर खारवेळ की बात संपूर्ण भिन्न थी। वे कलिंग की संतान, कलिंग की राजनैतिक-परंपराओं के परिपोषक तथा कलिंग सस्कृति के पूजक थे। खारवेळ ने मौर्य शासन काल मे व्यवच्छिन्न हुए चौसठ कलाओं से युक्त तौर्यत्रिक का पुनरूद्धार किया था:

"मुरिय काल वोछिंनं च चोयठि अंग संतिकं तुरियं उपादयति॥"

कलिंग के कलाप्रेमियों को प्रोत्साहित करने के लिए उन्होंने अपने राजत्व के तीसरे वर्ष में सर्वत्र संगीत-नृत्य आदि के उत्सव समारोहों की राजकीय पृष्ठपोषकता की। हाथीगुम्फा अभिलेख की भाषामें "उस समय मानों कलिंग नगरी क्रीडाप्रमत्त हो उठी थी [कीडापयति नगरीं]"। राणीगुम्फा के खोदित चित्रों से भी खारवेळ का सगीतानुराग और पृष्ठपोषकता का परिचय मिलता है। निचले खण्ड के दाहिनी और के प्रकोष्ठ में संगीत नाटक अनुष्ठान का एक आकर्षक चित्र है। जिसमें चंद्रातप-मण्डित एक रंगमंच पर एक पीनस्तनी यौवनवती नर्तकी नृत्य कर रही है। उसकी युग्म वेणी कमर के नीचे दोनों ओर दोलायमान होकर है। मस्तक पर झीन-उत्तरीय, कानों में कुण्डल,

गले में हार, पगों में पायल, हाथों में कोई अर्थपूर्ण मुद्रा और दाहिने पग में ताल-विन्यास है। चार नारियां हैं जो एकयतानिकाएं जान पड़ती हैं। एक मृदंग, एक तबले की भांति कोई वाद्य, बाकी दो के हाथों में वीणा और बाँसुरी है। इस अभिनव जीवंत नर्तन चित्र को देख कर अपने आप नंदीकेश्वर के 'अभिनय-दर्पण' का उस श्लोक का स्मरण हो जाता है :

आस्येनालम्वयेद गीतं
हस्तेनार्थ प्रदर्शयेत्।
चक्षुर्भ्या दर्शयेद भावं
पादाभ्यां तालमाचरेत॥ (चि. १०)

इस चित्र में नारियों के द्वारा मृदंग और तबला सदृश किसी वाद्य का वादन तात्पर्यपूर्ण है। क्यों कि नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने नारियों के द्वारा इन वाद्यों का वादन निषेध बताया है। इसलिए कि इस वादन हेतु समीचीन शक्ति और श्रम आवश्यक है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि भरत मुनि के पूर्व काल में नारियाँ भी ये वाद्य भी बजाया करती थीं तथा राणीगुम्फा का वह चित्र भरत मुनि के पहले का है। राणीगुम्फा के ऊपर के खण्ड में भी अलग-अलग भंगिमा में नृत्य करती दो कृशांगी तरूणियों के चित्र है। वहां भी स्वर-संगम के लिए तीन नारियां मृदंग, करताल और वीणा लिए है। पर निचले खण्ड के चित्र की भांति इसमें रंगमंच नहीं है।

उपरोक्त दोनों नृत्य-संगीत समारोह में अपने दोनों महिषियों के साथ बैठे खारवेळ तन्मय मुद्रा में रसास्वादन करते दर्शाये गये हैं।

ततोवागुम्फा [नं.२] में नृत्य का एक और जीवंत चित्र है। एक वृक्ष के नीचे एक नारी नाच रही है। कोई पुरूष वीणा बजा रहा है। उनके वेश-भूषण, विशेषकर केश विन्यास अत्यंत चित्ताकर्षक है। वीणा की बनावट भी चमत्कृत करती है (चि.क्र.११)।

उस समय कलिंग में नृत्य-संगीत कला की शीर्षता का साक्ष्य प्रदान करते हैं खारवेळ के अभिलेख और शिलांकित चित्रावलियां।

गांधर्ववेद प्रवीण महाराज खारवेळ की दक्ष पृष्ठपोषकता से ये कलाएं सदा पल्लवित होती रहीं। आदि कवि वाल्मीकि ने यथार्थ में कहा है कि राजानुग्रह के बिना ये राज्य के हितकारी नृत्य संगीत आदि कलाओं का वर्द्धन असंभव है।

नाट्यविशारदों के मतानुसार राणीगुम्फा में एक प्रेक्षागृह का निर्माण हुआ था। राणीगुम्फा का यह रंगमंच निश्चित रूप से एक शास्त्रसम्मत प्रेक्षागृह है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह प्रेक्षागृह भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र के अनुसार बना था। पर यह मत ग्रहणयोग्य नहीं है। हो सकता है कुछ समानता हों। क्योंकि इस रंगमंच का निर्माण ई.पू. पहली सदी में हुआ था जबकि नाट्यशास्त्र की रचना काल ई. पहली- तीसरी सदी है। राणीगुम्फा की गठनशैली और कलात्मकता के आधार पर यह निश्चित रूपसे कहा जासकता है कि तत्कालीन भारतवर्ष में यह एक भव्य रंगमंच था। खारवेळ के राजत्व काल में कलिंग के शिल्पियों ने उस समय की उन्नत संगीत नृत्य परंपरा के कालजयी आलेख्य के रूप में उदयगिरि और खण्डगिरी के पत्थरों पर जो उत्कीर्णित कर गये हैं उससे अनंत काल तक भविष्य के कलानुरागी अनुप्राणित होते रहेंगे, इस में द्विमत होने की क्षीणतम शंका भी नहीं है।

—o—

परिशिष्ट-१

क्षुद्र ब्राह्मी अभिलेखः

खारवेळ के हाथीगुम्फा शिलोलख के अतिरिक्त उदयगिरि खण्डगिरि के गुफाओं में अब ब्राह्मी लिपि में खोदित तेरह अभिलेख पाए गये हैं। ये अभिलेख सब से पहले मार्खम किटो के द्वारा सन्. १८३७ में आविष्कृत हुए थे। प्रोफेसर राखाल दास बेनर्जी ने इसे Ep. Ind. Vol XIII और डॉ. वेणीमाधव बरूआ ने I H Q Vol. XIX मं इन्हें संपादित कर के प्रकाशित किया था। ऐतिहासिक डॉ. नवीन कुमार साहू ने स्वरचित अंग्रेजी ग्रंथ "खारवेल" [१९८४] में पुनः संपादित कर प्रकाशित किया। उन अभिलेखों का सही पाठोद्धार और व्याख्या फिरसे दे रहे हैं। साधारण पाठकों की सुविधा के लिये अस्पष्ट वर्णों के लिये वर्तनी का प्रयोग नहीं किया गया है।

१- मंचपुरी गुम्फा अभिलेख - (ऊपरी खण्ड):

पंक्ति-१- अरहंत पसादाय कलिंगानं समनान लेनं कारितं राजिनो ललाकस
पंक्ति-२- हथिसिहस पपोतस धुतुना कलिंग चकवतिनो सिरिखारवेलस
पंक्ति-३- अगमहिसिना कारितं [।।]

भावानुवाद

अर्हतों के आशीर्वाद से चक्रवर्ती सम्राट श्री खारवेल की अग्रमहिषी ने, जो हथीसिंह [हस्ती सिंह] की प्रपौत्री और ललाक [ललार्क] की दुहिता थीं। कलिंग में श्रमणों के लिए इस गुफा का खनन करवायाथा।

पादटीका- हाथीगुम्फा अभिलेख में इन्हीं अग्रमहिषी को वजिरघरराणी के रूप में अविहित किया गया है।

२. मंचपुरी गुम्फा अभिलेख - निचला खण्ड

क--ऐरस महाराजस कलिंगाधिपतिनो महामेघवाहनस कुदेपसिरिनो लेणं [॥]

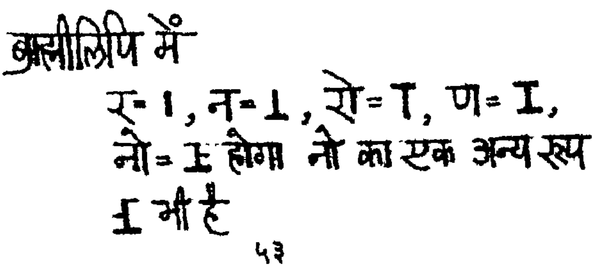
भावानुवाद: यह गुम्फा कलिंगाधिपति महाराज आर्य महा मेघवाहन कुदेपसिरि का है

श्री बेनर्जी ने "ऐरस" को "खरस" और "कुदेपसिरि" को "कुडेपसिरि" के रूपमें पाठोद्धार किया है। पर अभिलेख की प्रतिच्छवि और उसे स्वयं क्षेत्र पर देखने के पश्चात लगता है श्री बेनर्जी का पाठोद्धार ग्रहणीय नहीं है। राजा कुदेपसिरि के बारे में कोई सविशेष विवरण प्राप्त नहीं होता। संभवत: वे खारवेळ के परवर्ती राजा थे।

ख--कुमारो वडुखस लेणं

भावानुवाद- कुमार वडुख का गुफा।

डॉ. नवीन कुमार साहू ने इस अभिलेख का पाठ "कुमार वडुखस लेनं" के रूप में किया है। पर वह तर्क -संगत नहीं है। "र" और "न" वर्णों पर स्पष्ट आड़ी रेखा हैं जिससे वे ब्राह्मी लिपि के अनुसार "रो" और 'ण" होंगे। ब्राह्मी लिपि में इन वर्णों के स्वरूप दर्शाते हुए एक चित्र-फलक प्रदत्त है :



अनुमान है अभिलेख में वर्णित "कुमार वडुख" खारवेळ के वंशज एक राजकुमार थे। वे किस राजा के पुत्र थे और वे कब सिंहासनासीन हुए, तथ्यों के अभाव से कह पाना संभव नहीं है।

३. सर्पगुम्फा अभिलेख

क- चूल कंमस कोठा जेया च (चि. १२)

चूलकम्म का अर्थ है "उप-कर्म सचिव। इस अभिलेख का भावानुवाद होगा "चूलकम्म का अभेद्य आवास प्रकोष्ठ"।

ख- इस अभिलेख की प्रतिच्छवि इतना अस्पष्ट है कि सठीक पाठ करपाना हमारे लिए संभव नहीं है। परन्तु डॉ. साहू ने इसे

"कंमस कोठा च
खिणाय च पसादो"

और श्री बेनर्जी ने

"कंमस हलखि
णाय च पसादो"
बताया है.।

४. हरिदास गुम्फा अभिलेख

"चूलकंमस पसातो कोठा जेया च"-जिसका अर्थ "चुलकंम का अभेद्य उपासना और आवास प्रकोष्ठ" होगा।"

५- व्याघ्रगुम्फा अभिलेख

नगर अखंदस
स भूतिनो लेणं

अर्थात- नगर विचारपति भूति का गुम्फा।

श्री बेनर्जी ने विचारपति का नाम सभूति या सुभूति बताया है। लगता है वह, ग्रहणयोग्य नहीं है। द्वितीय पंक्ति का आद्य वर्ण "स" प्रथम पंक्ति का अंतिम वर्ण के रूप में भी है। यह अर्थ की दृष्टि से आवश्यक है। इसका संशोधित पाठ होगा :-

नगर अखदसस भूतिनो लेणं

६- जम्बेश्वर गुम्फा अभिलेख

"महामदस बारियाय नाकियस लेनं" अर्थात "महामद नाकिय और बारिया का गुम्फा"।

तब प्रधानमंत्री को महामद कहा जाता था। बारिया संभवतः उनकी पत्नी थी।

७- छोट हाथीगुम्फा अभिलेख

"-------स लेनं" अर्थात" ------का गुम्फा" [इस अभिलेख के आद्य अंश दुष्पाठ्य है।

८- अनंतगुम्फा अभिलेख

"दोहद समणानं लेनं" अर्थात "दोहद श्रमणों का गुम्फा"

अनंतगुम्फा के बरामदे में एक पत्थर पर चार वर्ण हैं [?]. ये वर्ण दुष्पाठ्य हैं।

९- ततोवा गुम्फा अभिलेख

गुम्फा नं. १-'पादमूलिकस कुसुमस लेण नि[?]

इस अभिलेख का संपूर्ण अर्थ बतापाना कठिन है, क्यों कि अंतिम वर्ण पढा नहीं जाता। "पादमूलिक" संभवतः राजा के व्यक्तिगत सेवक हैं। जिनका नाम "कुसुम" था। कोशल के किरारी काष्ठस्तंभ अभिलेख में भी यही पदवी उत्कीर्णित हुई है, यह उल्लेखनीय है।

गुम्फा नं २-इस गुम्फा के भीतर दीवार पर ब्राह्मी लिपि के कुछ वर्ण हैं। संभवतः परवर्ती काल में किसी शिष्य ने अध्ययन के लिए इन्हें उत्कीर्णित किया था। ये खारवेळ के परवर्ती काल के वर्ण हैं।

परिशिष्ट-२

खारवेळ का शासन काल

खारवेळ के शासन काल के बारेमें निश्चित रूप से कुछ कह पाने के लिए अथवा उसका संतोषप्रद समाधान के लिये हमें भारत तथा ओड़िशा इतिहास के संकलनों पर निर्भरशील होना ही होगा। पर नाना मुनर्यो मतर्यो विभिन्नाः यही विड़म्वना है।

सम्राट खारवेळ के काल के बारे में राजेंद्रलाल मित्र का मत है ई.पू. चौथी सदी, जब कि फ्लिट् (Fleet) और ल्युदर (H-Lu'der) के अनुसार वह ई.पू. तीसरी सदी है। भगवानलाल इंद्रजी, काशीप्रसाद जयसवाल, राखालदास बेनर्जी आदि इतिहासकारों के अनुसार वे ई.पू. दूसरी सदी के हैं। एक ओर रमाप्रसाद चंद, हेमचंद्र रायचौधुरी, नगेन्द्रनाथ घोष, दीनेशचन्द्र सरकार और नवीनकुमार साहू हैं जिन्होंने अपने तर्कों के आधार पर इस कालखण्ड को ई.पू. पहली सदी बताया है। लगभग एक सौ वर्षों से इस समस्या के हल के लिए तर्क और ऐतिहासिक विवाद चला आ रहा है।

खारवेळ ने अपने अभिलेख में अपने पूर्ववर्ती नंद और मौर्य शासन का स्पष्ट उल्लेख किया है। पुनश्च ई.पू. चौथी सदी में नंद वश और तीसरी सदी में मौर्य सम्राट अशोक ने कलिंग पर विजय पायी थी। इन्हीं निश्चित और सुदृढ प्रमाण के रहते उसी कालखण्ड में खारवेळ की उपस्थिति की कल्पना तक नहीं की जा सकती। जिन इतिहासकार और लिपिविद विद्वानों ने खारवेळ को ई.पू. दूसरी सदी में अवस्थापित किया है, उनके प्रमुख तर्कों की समीक्षा एकांत रूप से आवश्यक है।

सब से पहले भगवानलाल इंद्रजी ने हाथीगुम्फा अभिलेख की १६ वीं पंक्ति का पाठ प्रस्तुत किया। उन्होंने अपनी व्याख्यानुसार खारवेळ के राजत्व के त्रयोदश वर्ष को संवत १६५ बताया है।

उनके मतानुसार अशोक की कलिंग पर विजय प्राप्ति यानि ई.पू. २५५ से मौर्य संबत का प्रारंभ हुआ है. अतः खारवेळ का सिंहासन आरोहण का वर्ष ई.पू. १०३ होगा [(२५५-१६५) + १३]। यद्यपि काशीप्रसाद जयस्वाल और राखालदास बेनर्जी ने इंद्रजी के द्वारा प्रस्तुत पाठ के कुछेक अंश से सहमत हुए नहीं है, तब भी उन्होंने चंद्रगुप्त मौर्य के राज्याभिषेक वर्ष [ई.पू. ३२२] से मौर्य संबत का प्रारंभ बताया है और उसीके अनुसार ई.पू. १७० को खारवेळ का सिंहासनारोहण वर्ष माना है [(३२२-१६५) + १३]। अब यह प्रश्न का उठना स्वाभाविक है कि भारत में मौर्य संबत के नाम से कभी भी किसी संबत का प्रचलन हुआ था क्या? इस संदर्भ में अब तक किसी शिलालेख या ग्रंथ से कोई तथ्य नहीं मिलता। यहां तक कि मौर्य वंशीय नरपति चंद्रगुप्त और अशोक तक ने भी इस संबत का उल्लेख कहीं भी किया नहीं है। ऐसा एक भी दृष्टांत उपलब्ध नहीं है। इस दृष्टि से खारवेळ सरीखे, मगध के प्रति सदा प्रतिशोध परायण, कलिंग के स्वाधीन और चक्रवर्ती विरूद-विमण्डित सम्राट का, वह भी मगध का मौर्य आधिपत्य का भारतवर्ष से अस्तमित हो जाने के पश्चात, अपने अभिलेख में ''मौर्य संबत'' को अपनाने की कल्पना तक नहीं की जासकती। यह भी परवर्ती काल में प्रमाणित हो चुका है कि हाथीगुम्फा अभिलेख की १६ वीं पंक्ति में कहीं भी ''मौर्य सबत'' का उल्लेख नहीं है। उस पंक्ति में स्पष्ट रूप से '' मुरिय काल'' उत्कीर्णित हुआ है। पर वह मौर्य संवत नहीं मौर्य शासन को सूचित करता है। पाठकों की जानकारी के लिये १६ वीं पंक्ति के वही संदर्भित अंश का पाठ फिरसे नीचे प्रदत्त है :

मुरिय काल वोछिनं च चोयठि अंग संतिकं तुरियं उपादयति [॥] (चित्र. १३)

अर्थात- मौर्य काल में व्यवच्छिन्न हुए चौसठ अंगयुक्त तौर्यत्रिक (नृत्य, संगीत, वादित्य) का उन्नयन करवाया।

यथार्थ में डॉ. साहू ने कहा है कि इसमें मौर्य संबत की परिकल्पना तक नहीं है और खारवेळ के काल निरूपण के लिये इसकी कोई भूमिका ही नहीं है।

हाथीगुम्फा अभिलेख में अन्य चार कीर्तिमान राजाओं के नाम मिलते हैं। लगता है ये ही खारवेळ के राजत्व काल को निरूपित करने में अत्यंत सहायक सिद्ध होंगे। वे हैं-नंदराज, वृहस्पतिमित्र, सातकर्णी और यवन राज।

यवन राज

हाथीगुम्फा शिलालेख की आठवीं पंक्ति में यवनराज ड़िमत का नामोल्लेख है, जयस्वाल, बेनर्जी, ष्टेनकोनो [Sten konow] आदि ऐतिहासिकों का यही मत है। अभिलेख में "यवनराज" शब्द सुस्पष्ट है पर उसके परवर्ती शब्द मात्र "म" वर्ण ही है और बाकी दो वर्ण पूर्ण रूपसे विनिष्ट हो चुके हैं। उन इतिहासकारों ने कल्पना के आधार पर उसे "डिमित" पढ़ा है। एतादृश अनुमान-भित्तिक पठन के जरिए, उस पर डिमित को ग्रीक राजा डिमेटियस मान कर खारवेळ के शासन काल को ई.पू. दूसरी सदी के प्रथमार्द्ध के रूपमें निरूपित करने का प्रयास कतई ग्रहणीय नहीं हो सकता।

वृहस्पति मित्र

मगध राज वृहस्पति मित्र ने [बहसतिमित] पराजय स्वीकार कर खारवेळ की पद वंदना की। यह विवरण हमें हाथीगुम्फा अभिलेख की १२ वीं पंक्ति से मिलता है। उपरोक्त वृहस्पति मित्र को सुंग वंश के शासक पुष्यमित्र सुंग के रूप में काशीप्रसाद जयस्वाल ने चिन्हित किया है। पुष्यमित्र ई.पू. १८५ में मगध में सुंग शासन के स्थापयिता हैं। इससे उनका असाधारण पाण्डित्य की सूचना अवश्य

ही मिल जाती है, पर ऐतिहासिक समस्या का समाधान के लिये वह कदापि उपयोगी नहीं है। क्यों कि वृहस्पति मित्र नामक राजा भारत इतिहास में अज्ञात नहीं हैं। अभिलेखों और मुद्राओं में भी यह नाम अंकित होकर है। इस परिप्रेक्ष में हाथीगुम्फा अभिलेख में वर्णित वृहस्पति मित्र को पुष्य मित्र के रूप चिन्हित करना एक भ्रांत प्रयास ही माना जाएगा।

कोशाम्बी के समीपस्थ पोभषा ग्राम से प्राप्त एक शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि राजा वृहस्पति मित्र की माता का नाम गोपाली था। उनके मामा आषाढ़ सेन अहिछत्र के शासक थे। एक और अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि राजा वृहस्पति मित्र की यसमिता नाम की बेटी मथुरा क्षेत्र की रानी थीं। अभिलेख में दोनों आषाढ़ सेन और यसमिता ने राजा वृहस्पति मित्र के स्वजन होने के नाते स्वयं को गौरवान्वित माना है। लिपितात्विक दृष्टि से वृहस्पति मित्र के पभोषा अभिलेख और मुद्रा की लिपियां ई.पू. प्रथम शताब्दी की मानी गयीं है। खारवेळ के अभिलेखों की लिपियां इन लिपियों की समकालीन लिपियां हैं, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है।

नंदराज

हाथीगुम्फा अभिलेख की षष्ठ और द्वादश पंक्तियों में नंदराज का नामोल्लेख है। षष्ठ पक्ति के विवरण के अनुसार खारवेळ ने अपने राजत्व के पांचवें वर्ष मे नंदराज के द्वारा तीन सौ [तिवस सत] वर्ष पहले खुदवायी गयी प्रणाली को तिनसुली होते हुए कलिंग नगरी तक विस्तृत किया था। द्वादश पंक्ति के अनुसार खारवेळ ने अपने राजत्व के बारहवें वर्ष में मगध पर विजय प्राप्त होने के पश्चात नंदराज के द्वारा लिया गया कालिंगजिन सहित अंग और मगध से अतुल संपदा ले आये थे।

हाथीगुम्फा अभिलेख में उल्लिखित नंदराज निशिचत रूप से महापद्म नंद हैं। उल्लिखित "तिवस सत" का अर्थ है तीन सौ। इस सिद्धांत में उपनीत होने के पश्चात खारवेळ का समय निर्णय

करने में कोई कठिनायी नहीं रह जाती है। पर इस पर भी कुछेक विद्वानों का भिन्न मत है अत. उन पर भी विचार समीक्षा आवश्यक है।

हाथीगुम्फा अभिलेख के नंदराज को जयस्वाल और बेनर्जी ने शिशुनाग वंशीय राजा नंदिवर्धन और कृष्णचंद्र पाणिग्राही ने मौर्य सम्राट अशोक के रूप में चिन्हित किया है। यह उल्लेखनीय है कि शिशुनाग वंश के राजा नंदिवर्धन के पराक्रम या युद्धाभियान के बारे मे कुछ भी प्रमाण इतिहास या पुराणों में संरक्षित हो कर नहीं है। उन्होंने कलिंग पर कभी विजय पायी थी इसकी भी कोई सूचना किसी भी सूत्र से प्राप्त नही होती। वरन् मत्स्य, वायु, ब्रहमाण्ड आदि पुराणो में तथा जैन परिशिष्ट पर्व में नंदराज महापद्म का कलिंग पर अधिकार के बारे में उल्लेख है। उन्होंने अनेक राज्यों पर विजय पायी थी अत उन्हें भागवत में द्वितीय पर्शुराम की आख्या मिली है। इसके अतिरिक्त ओडिशा के कई क्षेत्रों से नंदवंश की मूद्राए भी प्राप्त हुई है। हाथीगुम्फा अभिलेख के नंदराज को मौर्यवंशी सम्राट अशोक मानने के लिये कोई ग्रहणीय ऐतिहासिक कारण भी नहीं है। प्राचीन भारत के किसी भी अभिलेख अथवा साहित्य में अशोक नदवंश के शासक के रूप में वर्णित हुए हैं क्या? यह भी एक प्रश्न है। एकादश शताब्दी में काश्मीर के सोमदेव और क्षेमेंद्र नामक दो पण्डितोने क्रमशः "कथा-सरित- सागर" और "बृहत् कथा मजरी" नाम से दो ग्रंथों की रचना की थी। ये दोनों रचनाएं ई द्वितीय शताब्दी मे रचित पैशाची भाषा का "कथा कोश" या "वृहत् कथा कोश" के सस्कृत अदुवाद हैं। यह एक अनवद्य कथा-संकलन है। इसमे चंद्रगुप्त नामक नायक को "पूर्व नंदसुत" के रूप में और ई. षष्ठ शताब्दी में रचित विशाखादत्त की नाट्य रचना "मुद्राराक्षस" मे अशोक के पितामह चद्रगुप्त को "नंदान्वय" के रूप में अभिहित किया गया है। इस विचार से अशोक को नंदराज मान लेना कहां तक तर्क सम्मत होगा, वह विचारणीय है। हाथीगुम्फा अभिलेख से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि खारवेळ को नंद वंश और मौर्य वंश

के शासन के बारे में पता था। उन राजवंशों का उल्लेख उन्होंने एकाधिक बार किया है। अतः वे मौर्य सम्राट अशोक को नंदराज मान लेने का भ्रम भी कर सकते हैं, यह असंभव सा लगता है। खारवेळ के प्राय एक शताब्दी के पश्चात शक राज रूद्रदमन ने अशोक को मौर्यवंशी नरपति के रूप में अपने जुनागड़ अभिलेख में उल्लेख किया है:

"मौर्य्यस्य राज्ञः चंद्रगुप्तस्य राष्ट्रियेण वैश्येन पुष्यगुप्तेन कारितं अशोकस्य मौर्य्यस्य कृते यवनराजेन तुषास्पेनाधिष्ठाय प्रणालीभिरलंकृतं।"
(पं. ८-९)

मोटे तौर पर यही कहा जासकता है कि अशोक को नंदवंशी राजा के रूपमें प्रतिपादित करने का प्रयास भ्रमात्मक ही होगा और हाथीगुम्फा अभिलेख में वर्णित नंदराजा महापद्म नंद ही थे, इस में प्रतिवाद की क्षीणतम शंका भी नहीं होनी चाहिए।

अब प्रश्न उठता है "तिबस सत" का सही अर्थ क्या है १०३ या ३००! अनेक विद्वान इसे १०३ मानते हैं। पर खारवेळ के हाथीगुम्फा शिलालेख की १६ वीं पंक्ति में १०५ को "पानतरिय सत" लिखा गया है। उस हिसाब से १०३ "तितरिय सत" होना चाहिए। पाली भाषामें "पांच सौ शकट" "पंचहि शकट सतेहि" होगा। पांच सौ जातक कहानियों का "पंच जातक सत" के रूप मे उल्लेख हुआ है। हाथीगुम्फा अभिलेख की भाषा शास्त्रीय पालि भाषा की समीपवर्त्ती भाषा है। अतः इसका भाषांतरण पालि के अनुरूप ही होगा। अतः हाथीगुम्फा अभिलेख में उल्लिखित "तिबस सत" निश्चित रूप से ३०० ही होगा। यह १०३ हो ही नहीं सकता। इस सिद्धात पर पहुंचने के बाद खारवेळ के सही शासन काल के निर्णय में कोई कठिनाई रह नही जाती।

इ.पू. ३५० में कलिंग के अंतिम क्षत्रिय राजा की हत्या कर के महापद्म नंद ने कलिंग पर अधिकार पाया था। उन्होंने कलिंग पर राजत्व के कुछ ही समय बाद कलिंग के निवासियों

के अभाव और आवश्यकताओं का अनुभव कर नहर खुदवाने की योजना बनायी होगी। वह कार्य संभवत: उनकी मृत्यु के पूर्व ही पूरा हुआ होगा। महापद्म नंद की मृत्यु ई. पू. ३३४ को हुई, अत: वह कार्य ई.पू.३३५ को पूरा हो गया होगा। इसी को आधार बनाकर डॉ. साहू ने खारवेळ के राजत्व के पांचवें वर्ष को ई.पू.३५ [३३५-३००] माना है तथा ई.पू. ४० में राज्याभिषेक होने का मत प्रदान किया है।

सातकर्णी

हाथीगुम्फा अभिलेख की वर्णन के अनुसार सातकर्णी के बल-विक्रम की उपेक्षा करते हुए खारवेळ ने अपने राजत्व के दूसरे वर्ष ही उनके विरुद्ध युद्ध अभियान की तैयारियां की। इसके परिणाम के संबंध में हाथीगुम्फा शिलालेख पूर्ण रूप से मौन है। इस अभिलेख से यह स्पष्ट है कि खारवेळ अपने राजत्व के चौथे वर्ष के युद्धाभियान में सफल हुए थे और सातवाहन राजा को परास्त किया था। पर यहां भी सातकर्णी का उल्लेख हुआ नहीं है। अत: विद्वानों का मत है कि उस समय राजा सातकर्णी की मृत्यु हो चुकी थी और उनकी विधवा पत्नी पर राज्य शासन का भार था। अत: खारवेळ के राजत्व काल की गणना सातवाहन वंश के कालखण्ड के साथ मिला कर किया जाना आवश्यक है।

प्राचीन पुराणों की गणना के अनुसार मौर्य वंश ने १३७ वर्ष ओर सुग-काण्व वंश ने ११२ वर्षो तक शासन किया था। अत: सातवाहन वंशी सिमुक ने ई.पू. ७३ [ई.पू. ३२२-१३७-११२] में सुंग-काण्व शासन का अंत किया। सिमुक सातवाहान ने अपने राज्याभिषेक के पश्चात मगध की सुंग-काण्व शक्ति के विरुद्ध युद्धभियान के लिये दीर्घ काल का प्रयास किया होगा। इसी विचार से डॉ.साहू ने राय दी है कि सिमुक ने अपने राजत्व के पंद्रहवें वर्ष में मगध पर आक्रमण किया था और उसी के आधार पर उन्होंने

ई.पू. ८८ को सिमुक के राज्याभिषेक का वर्ष बताया है। पौराणिक मतानुसार सिमुक का शासन काल तेरह वर्ष, उनके पश्चात भाई कन्ह का अठारह वर्ष और कन्ह के बाद सिमुक के पुत्र सातकर्णी ने केवल दश वर्ष के लिये राज्य का शासन किया था। सातवाहन वंश प्रथम तीन राजाओं का शासन काल इस प्रकार निर्णित हुआ है:

सिमुक - ई.पू. ८८ से ई.पू. ६५ तक
कन्ह - ई.पू. ६५ से ई.पू. ४७ तक
सातकर्णी - ई.पू. ४७ से ई.पू. ३७ तक

खारवेळ के राज्याभिषेक ईसापूर्व ४० में हुआ था, इस निरूपण के साथ स्वतः सातकर्णी के राज्य काल की पुष्टी हो जाती है। खारवेळ के शासन के द्वितीय वर्ष अर्थात ईसापूर्व ३८ में सातकर्णी जीवित थे। पर चौथे वर्ष [ईसापूर्व ३६] युद्ध में सातकर्णी की विधवा रानी नायानिका ने सामना किया था।

सातवाहन वंश का समय निरुपण और खारवेळ का राज्याभिषेक किस समय हुआ था यह आज भी इतिहास की एक जटिल समस्या है। पर लगता है ईसापूर्व ४० को खारवेळ का राज्याभिषेक वर्ष मान लेना सत्य का अधिक निकटतम होगा। खारवेळ ईसापूर्व प्रथम शताव्दी में थे, इसमें कोई संदेह ही नहीं है। सर जॉन मार्शल (Sir John Marshall) ने भरहुत और उदयगिरि-खण्डगिरि की कलाकृतियों पर तुलनात्मक विवेचन कर भरहुत को ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी और खारवेळ के समकालीन उदयगिरि-खण्डगिरि को ईसापूर्व प्रथम शताब्दी का माना है। हाथीगुम्फा अभिलेख की लिपि भी लिपितात्त्विक दृष्टि से ईसापूर्व प्रथम शताब्दी की है।

परिशिष्ट - ३

खारवेळ के समय में शिल्पकला

पश्चिम ओड़िशा के गुड़हाण्डी से प्रागैतिहासिक युग के चित्रों के आविष्कार के पश्चात भारत में कला और स्थापत्य के क्षेत्र में ओडिशा ने एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। इसके पूर्व भारत में जिन कुछेक चित्रों का आविष्कार हुआ था उनमें से उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर के निकट पर्वत गुम्फा के चित्र और मध्यप्रदेश मे रायगढ जिला के सिहनपुर के पास पाए गये चित्र उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त भारत में कहीं और भी प्रागैतिहासिक चित्र हैं, निश्चित रूप से इनका कोई पता नहीं था। अब गुड़हाण्डी के चित्र भारत में प्रागैतिहासिक मानव के अन्यतम कलाकृति के रूप मे गृहीत हुए है। गुडहाडी में पाए गये चित्रों में विशेषकर एक शिकार का चित्र चित्ताकर्षक है। संपूर्ण चित्र का अंकन गेरू के रग से हुआहै और असका किसी प्रागैतिहासिक कलाकार का बालक तुल्य अकन होने के बावजूद उसमें अतर्निहित प्राणवत्ता और प्राकृतिक कमनीयता की सराहना विद्वानों ने की है। गुड़हांड़ी के अतिरिक्त पश्चिम ओडिशा के सबलपुर जिले में उलाफगड, सुंदरगड जिला के उषाकोठी, माणिकगड़ा और कालाहांडी जिले में योगीमठ आदि जगहो से भी प्रागैतिहासिक चित्र पाए गये हैं।

खारवेळ के हाथीगुम्फा अभिलेख से स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राग्मौर्य काल से कलिंग के पिहुण्ड़ में कालिंगजिन प्रतिमा की पूजा होती थी। डॉ. साहू बताते हैं, कलिंग के पिहुण्ड़ में प्रतिष्ठित जैन प्रतिमा भारत के ऐतिहासिक युग में प्रतिमा पूजा का प्रथम दृष्टान्त है। भारत मे मौर्य शासन काल से पत्थर काटने और खोदने की एक शैली विकसित हो चुकी थी। विहार राज्य के पटना जिले मे बराबर और नागार्जुनी पर्वतों में क्रमशः अशोक और उनके नाती

कालक्रम के साथ खोदित गुम्फाएं आज भी जर्जर अवस्था में हैं। इन गुम्फाओं के खनन के हेतु भारतीय प्रस्तर खोदन शैली में एक नयी धारा ने जन्म लिया। बराबर और नागार्जुनी पहाड़ी गुम्फाओं के खनन का यह प्रारंभिक प्रयास ईसापूर्व तृतीय शताब्दी से धीरे विकसित होकर ई. द्वितीय-तृतीय शताब्दी तक भाजा, बेडसा, कार्ले, कान्हेरी, अजंता आदि के अत्यंत कलात्मक बौद्ध गिरि गुम्फाओं में उत्कर्ष के शिखर स्पर्श करता सा लगा। गुफाखनन के प्राथमिक प्रयास और चरम उत्कर्ष के मध्यवर्ती काल खण्ड में उदयगिरि-खण्डगिरि में माध्यमिक उपादान लक्षणीय हैं। यह कहा जा सकता है कि भारतीय गुम्फा निर्माण कला की विकासधारा में उदयगिरि और खण्डगिरि ने दिग्दर्शक की भूमिका निभायी है।

खारवेळ के राजत्व काल में उदयगिरि-खण्डगिरि में कितनी गुम्फाएं थी बता पाने के लिये कोई विश्वसनीय तथ्य नहीं है। बेणीमाधव बडुआ ने हाथीगुम्फा अभिलेख की चतुर्दश पंक्ति का भ्रमपूर्ण पाठ कर के वहां ११७ गुम्फाओं की विद्यमानता की पुष्टि की है। पर वह ग्रहणीय नहीं है। जॉन मार्शल के अनुसार उन गुंफाओं की संख्या ३५ से अधिक होगी। पर मनमोहन गांगुलीने उन पहाड़ों में गुंफाओं की गणना की थी। उनके अनुसार गुंफाओं की संख्या २७ हैं। यह निश्चित रूप से स्वीकारणीय है कि मनुष्य और प्रकृति के हाथों कई गुंफाएं ध्वंस होगयी हैं, पर उनके अवशेष अब भी विद्यमान हैं। अब उदयगिरि में १८ और खण्डगिरि में १५ गुम्फाएं हैं। इन गुम्फाओं को बारिकी से देख कर डॉ. नवीन कुमार साहु, श्रीमती देवला मित्र और डॉ.रमेश महापात्र ने अपने अपने संदर्भो में कई अमूल्य तथ्यों पर प्रकाश डाला है। उन गुम्फाओं के अब प्रचलित नाम इस प्रकार हैं:

उदयगिरि		खण्डगिरि	
१.	राणीगुम्फा	१.	ततोवागुम्फा-१
२.	बाजाघर गुम्फा	२.	ततोवा गुम्फा-२
३.	छोट हाथीगुम्फा	३.	अनंत गुम्फा
४.	अलकापुरी गुम्फा	४.	तेंतुली गुम्फा
५.	जयविजय गुम्फा	५.	खण्डगिरि गुम्फा
६.	पणस गुम्फा	६.	ध्यान गुम्फा
७.	ठाकुराणी गुम्फा	७.	नवमुनि गुम्फा
८.	पातालपुरी गुम्फा	८.	बारभुजी गुम्फा
९.	मंचपुरी गुम्फा	९.	त्रिशूल गुम्फा
१०.	गणेश गुम्फा	१०.	अम्बिका गुम्फा
११.	जम्बेश्वर गुम्फा	११.	ललाटेंदु केशरी गुम्फा
१२.	व्याघ्र गुम्फा	१२.	अज्ञात
१३.	सर्प गुम्फा	१३.	अज्ञात
१४.	हाथी गुम्फा	१४.	एकादशी गुम्फा
१५.	धानघर गुम्फा	१५.	अज्ञात
१६.	हरिदास गुम्पा		
१७.	जगन्नाथ गुम्फा		
१८.	रोषेइ गुम्फा		

स्थानीय लोगों के द्वारा इन गुम्फाओं के नाम रखे गये हैं और अब ये भारतीय प्रत्नतत्व सर्वेक्षण संस्था के द्वारा स्वीकृत नाम हैं।

इन गुम्फाओं के संक्षिप्त विवरण नीचे प्रदत्त हैः। उदयगिरि में सर्वश्रेष्ठ गुम्फा है राणीगुम्फा। इसे "राणी नअर" भी कहा जाता है। यह दो खण्डों में बना एक सुंदर शैल निवास है।

निचले खण्ड में दोनों ओर गुफाएं खोदी हुई हैं। जिसके बीच में एक प्रशस्त आयताकार आंगन है। ऊपरी खण्ड एक विशाल प्राकृतिक गुम्फा है, जिसे अर्हतों के आवास के रूप में उपयोग करने लिये उसमें शिल्प-कौशल अपनाया गया था। राणीगुम्फा को एक रंगमंच के रूप में भी स्वीकारा गया है। सम्राट खारवेल की दिग्विजय वर्णन, नृत्य नाटकों के अभिनव दृश्य, सिंहपथ रानी (द्वितीय महिषी) के रोमांचक चरित्र की चित्रावली भी इसी गुम्फा में हैं, जिनके विवरण इसके पूर्व इसी ग्रंथमें दिये जा चुके हैं। उन पर चर्चा भी हो चुकी है। फिर भी पाठकों की जानकारी के लिये यहां रंगमंचका एक रेखा चित्र प्रस्तुत कर रहे है। (चि.क्र.१४)

राणीगुम्फा की बायीं ओर से लेकर दाहिने पार्श्व तक अनेक गुफाएं खोदित हुई थीं। उनमें से कुछेक ध्वंस हो चुकी हैं। जो अब भी अक्षुण्ण अवस्था में हैं, वे हैं-बाजाघर गुम्फा, छोट हाथी गुम्फा, अलकापुरी गुम्फा, जय विजय गुम्फा, गणेश गुम्फा, ठकुराणी गुम्फा, और पातालपुरी गुम्फा। इन गुम्फाओं में खोदित वृक्ष, लता, जीवजंतु और नर-नारियों की प्रतिमूर्तियां कला की दृष्टि से राणीगुम्फा के चित्रों की समाकलीन जान पड़ती हैं।

बाजाघर गुम्फा में बारह प्रकोष्ठ हैं। प्रत्येक प्रकोष्ठ का अपना बरामदा है। अब अधिकांश प्रकोष्ठ भग्नप्राय हो चुके हैं। दाहिनी ओर जो प्रकोष्ठ है उसे मरम्मत के बाद खंभों के सहारे संरक्षित कर रखा गया है।

छोट हाथीगुम्फा में ईसापूर्व प्रथम शताब्दी का एक क्षुद्र अभिलेख है [देखें परिशिष्ट -१.नं ७]। इस गुम्फाके सम्मुख भाग पर तीन-तीन हाथियों को पत्र-पुष्प लेकर धीरे-धीरे आते से दिखाए गये हैं। दोनों पार्श्व के हाथियों में प्रथम है शावक, बीच में बड़े बड़े दांतोंवाला नर हाथी और अंत में है हथिनी। लगता है जैसे वे तद्गत मन से अर्हतों के स्वागत सम्मान के लिए बढ़ते आरहे हैं।

अलकापुरी गुम्फामें ऊपर निचे दो प्रकोष्ठ हैं। निचे का प्रकोष्ठ नष्ट हो चुका है। ऊपर के प्रकोष्ठ में हस्ती, सिंह आदि अनेक चित्र खोदित हुए हैं। कुछेक जानवरों के पंख हैं। मनुष्य तथा पक्षियों के सरवाले जानवर भी हैं। इस गुम्फा में एक राज हस्ती का चित्र सब को आकार्षित करता है। राजहस्ती कमल फूल लिए दर्प से खड़ा है, उसके दोनों ओर दो हाथिन छत्र और चामर लिए उसकी सेवा नियुक्त होकर खड़ी हैं। गुम्फा में बायीं ओर एक और चित्र है। जिसमें एक पुरुष है, उसकी बायीं भुजा में एक नारी को धारण किये हुए है और एक हाथी है जिसकी सूंढ सहलाकर उसपर सवार होने की इच्छा से अनुरोध करता सा दिखता है वह पुरुष। उस खोदित चित्र में वह हाथी भी कुछ बैठ जाने को उद्यत सा लगता है ।

जय विजय गुम्फा में भी दो प्रकोष्ठ हैं। इस गुम्फा में खोदित होकर वृक्ष देवता की पूजा का एक चित्र है। वृक्ष चैत्य की चारों ओर वेष्टनी, ऊपर छत्र और पार्श्व में पताकाएं हैं। एक पुरुष और एक नारी दोनों ओर पूजा की मुद्रा में हैं। पुरुष प्रणाम मुद्रा में और नारी फूल की माला लिए खड़ी है। दोनों ओर से दो गंधर्व पूजा के उपचार लिये वृक्ष देवता की पूजा में सम्मिलति होने को आते से दिखाई दे रहे हैं। इस गुम्फा में द्वारपाल के रूपमें धोती बांधे एक पुरुष है और दाहिनी ओर एक नारी खड़ी है जिसके दाहिने हाथ में एक तोता है। उसके सज्जित केश के ऊर्ध्व भाग पुष्प -पत्रों से मण्डित है।

पणस गुम्फा में कला का कोई संकेत ही नहीं है और इसकी बनावट भी साधारण ही है।

ठाकुराणी और पाताल पुरी गुंफाओं में अलकापुरी की भांति पक्षयुक्त जीवों के चित्र हैं, पर यह निम्न मान की कलाकृतियाँ है।

मंचपुरी गुम्फा दो खण्डोंवाला एक विशिष्ट गुहाआवास है। कुछ विद्वानों के मतानुसार ऊपरी खण्ड का नाम "स्वर्गपुरी" और निम्न खण्ड का नाम "मंचपुरी" है। ऊपरी खण्ड के अभिलेख से (परिशिष्ट-१-अभिलेख-१) ज्ञात होता है कि चक्रवर्ती सम्राट खारवेळ की अग्र महिषी के द्वारा श्रमणों के लिए निर्मित हुआ था। निचले खण्ड के अभिलेख (परिशिष्ट-१.अभिलेख-२क) से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि इसका निर्माण महाराजा आर्य मेघवाहन कुदेपसिरि ने करवाया था। संभवतः कुदेपसिरि खारवेळ के परवर्ती राजा हैं। (परिशिष्ट-१-अभिलेख-२ख)। मंचपुरी गुम्फा के नीचले खण्ड में पिथुण्ड में कालिंगजिन की प्रतिमा की प्रतिष्ठा के चित्र के बारे में डॉ. नवीन कुमार साहू ने कहा है: "कालिङ्ग जिन की प्रतिमा के आगे राजपुरोहित अर्चना की मुद्रा में खड़े हैं, उनके पीछे स्वयं खारवेळ हैं, उनके पीछे राजमहिषी के पीछे राजकुमार कुदेपसिरि प्रणाम मुद्रा में खड़े होकर कालिंग जिन के प्रति श्रध्दार्पण करते दिखाई देते हैं। राजछत्र विहीन सम्राट के शिरोदेश पर वाद्य बजाते दो गंधर्व हैं। राजछत्र की भांति यह भी एक गृहीत राजकीय संकेत है। राजकुमार के मस्तक पर उदीयमान सूर्य अंकित है। जिस हाथी पर राज परिवार पिथुण्ड आया था वह हाथी सब के पीछे खड़े होकर कालिंगजिन के प्रति भक्ति-ज्ञापन करता सा दिखाई देता है। हस्ती के ऊपरी भाग में एक विद्याधर पूजा उपहार लिए आकाश मार्ग से जिनपीठ को आते से दिखते हैं। यह शिलांकन कला और धर्म की दृष्टि से अत्यंत गुरूत्वपूर्ण है। पर विडम्बना तो यह है कि अब कालिंग जिन की प्रतिमा के बहुलांश टूट चुके हैं। श्रीमती देवला मित्र के मतानुसार ईसा के पूर्व काल में जैनों की मनुष्याकृति प्रतिमा की परिकल्पना तक हुई नहीं थी। उन्हें उदयगिरि और खण्डगिरि की गुम्फाओं में उस समय की एक भी मनुष्याकृति जैन प्रतिमा मिली नहीं थी। पर खण्डगिरि की अनंत गुम्फा में एक मनुष्याकृति लक्ष्मी की प्रतिमा है। इस संदर्भ में डॉ.साहू का

मत है- "मंचपुरी के नीचले खण्ड में कालिंग जिन की मूर्ति टूट चुकी है। वह मनुष्याकृति प्रतिमा थी इसके संकेत उस भग्न विग्रह से मिल जाते हैं।"

गणेश गुम्फा के दाहिने प्रकोष्ठ के भीतर एक गणेश की मूर्ति है। इसी से उसे गणेश गुम्फा के नाम से नामित किया गया है। ज्ञात होता है कि भौमकर वंशीय महाराजा शांतिकर देव के राजत्व काल में विरजा निवासी भिषक (वैद्य) भीमभट्ट का पुत्र नन्नट ने यहां एक प्रस्त (नाप का परिमाण) धान दिया था। यह कार्य भौम संवत ९१ (चंद्रांक) अर्थात ई. ८२७ [७३६+९१] को सम्पन्न हुआ था। उस समय गुम्फा के सामने दो हाथियों की प्रतिमाएं भी स्थापित हुई थीं। इस गुम्फा के आभ्यंतरीण चित्र रानीगुम्फा के ऊपरी खण्ड में बने चित्रों के आधार पर बने हुए होने के बावजूद उनसे भिन्न लगते हैं। इसमें लगता है कविवर भास वर्णित उदयन और वासवदत्ता की प्रेम-कथा चित्रित हुई है। पर इन अंकनों में भौम कालीन कला का निखार है।

जम्बेश्वर गुम्फा में एक क्षुद्र ब्राह्मी अभिलेख है [परिशिष्ट - क्षुद्र ब्राह्मी अभिलेख - नं ६](।) जिससे पता चलता है कि इस गुम्फा का निर्माण महामंत्री नाकिय और बारिया के द्वारा हुआ था।

व्याघ्रगुम्फा में भी दो ही पंक्तियों में एक क्षुद्र ब्राह्मी अभिलेख है [परिशिष्ट- क्षुद्र ब्राह्मी अभिलेख नं- ५](।) नगर विचारपति भूति ने इसे खुदवाया था, यह बात इसी अभिलेख से स्पष्ट हो जाती है। इस गुम्फा का सम्मुख भाग एक मुंह खोले बाघ के सर की तरह दिखाई पड़ता है जिससे इसे "व्याघ्रगुम्फा के नामसे नामित गया है।

आकृति के आधार पर ही इस गुम्फा का नामकरण "सर्पगुम्फा" हुआ है। इस गुम्फा में भी दो अभिलेख हैं [परिशिष्ट- क्षुद्र अभिलेख- नं. ३](I) प्रथम में यह उल्लेख है कि यह उपकमीसथिय [चूलकंम] का अभेद्य आवास प्रकोष्ठ था। द्वितीय अभिलेख का पाठोद्धार संभव नहीं हो पाया।

हाथीगुम्फा एक प्राकृतिक गुम्फा है। आकृति के अनुसार ही इसका नामकरण हुआ है। खारवेळ के राजत्व काल में शिल्प कौशल से शायद वैसा बनाया गया हो। इस गुम्फा के आभ्यंतरीण छत् पर महाराजा खारवेळ की एक दीर्घ प्रस्तर लिपि खोदित हुई है। उसका संपूर्ण विवरण इस ग्रंथ के द्वितीय परिच्छेद में दिये गये हैं।

हाथीगुम्फा और गणेश गुम्फा के बीच मे धानघरगुम्फा है। इसके द्वार पर धोति चद्दर दार पहरेदार, पगड़ी बांधे, नंगे पांव, बड़ी सी लाठी टिकाए खड़ा है। यह अनुच्च गुम्फा भी कला की दृष्टि से विशेष आकर्षणीय नहीं है;।

हाथीगुम्फा की बायीं ओर थोड़ी सी दूरी पर है हरिदास गुम्फा। सतदस शताब्दी के ओड़िआ सिद्ध संत हरिदास के नामानुसार यह गुम्फा नामित है। ओड़िआ कवि सदानंद कविसूर्य ब्रह्मा प्रणित "नाम चिंतामणि" ग्रंथ से ज्ञात होता है कि बादशाह ने उन्हें इसलाम धर्म से दीक्षित करने को उनपर काफी अत्याचार किया था। शायद वह बादशाह हैं औरंगजेब। यह गुम्फा भी खारवेळ के समय ही बनवायी गयी थी। क्यों कि इसमें भी ईसापूर्व प्रथम शताब्दी का एक क्षुद्र अभिलेख है [परिशिष्ट -१- क्षुद्र ब्राह्मी अभिलेख- नं,४](I)

जगन्नाथ गुम्फा की दीवार पर एक रंगीन चित्र था। जिसकी पूजा भी हुआ करती थी। शायद यही कारण है जिससे इस गुम्फा

का नाम जगन्नाथ गुम्फा पड़ा है। अब वह रंगीन चित्र पूर्ण रूपसे मिट चुका है। पर गुम्फा के प्राचीन अलंकरण अक्षुण्ण हैं। यह उदयगिरि में सबसे बड़ी कृत्रिम गुम्फा है। इस गुम्फा में जब जगन्नाथ की पूजा होती थी तब पासवाली गुम्फा में महाप्रसाद का रंधन कार्य हुआ करता था। उसीसे वह गुम्फा रषोई गुम्फा के नाम से परिचित है।

खण्डगिरि के गुम्फा समूह:

खण्डगिरि की दोनों ततोवा गुम्फाओं के तोरणों पर शुक पक्षी उत्कीर्णित हुए हैं। संभवतः इसी कारण वे गुफाएं ततोवा नामसे नामित हुई हैं। प्रथम गुम्फा के कुछ ही ऊपर दूसरी बनी है। प्रथम गुम्फा में दो और द्वितीय में तीन अलंकृत तोरणों से इनके प्रवेश पथ सजाए हुए हैं। प्रथम गुम्फा के दोनों तोरणों के बीच एक अभिलेख है [परिशिष्ट-१-क्षुद्र ब्राह्मी अभिलेख नं ९]। इसी से सिद्ध होता है कि यह गुम्फा पादमूलिक कुसुम के द्वारा बनायी गयी थी। इस गुम्फा के आगे धोति और चादर पहने दो द्वारपाल हाथों में तलवार लिए खड़े होने की छवि खोदित हुई थी। दूसरी गुम्फा में नृत्य और संगीत के कई अभिनव दृश्य हैं जिसका विवरण इसी ग्रंथ में इसके पूर्व दिया जा चुका हैं। इसी गुम्फा के भीतर ६ पंक्तियों में गेरु रंग से लिखित ब्राह्मी लिपि के कुछ वर्ण दिखाई पड़ते हैं। संभवतः परवर्ती काल में किसी विद्यार्थी के द्वारा लिपिशिक्षा के समय ये लिपियों लिखी गयी हैं। निश्चित रूप से ये खारवेळ की समकालीन लिपियाँ नहीं हैं।

खण्डगिरि पहाड़ के बीच की अनंत गुम्फा धार्मिक तथा शिल्पकला, दोनों दृष्टि से गुरूत्वपूर्ण है। यह गुम्फा ऊंची छत वाला एक लंबा प्रकोष्ठ है। गुम्फा के चार प्रवेश-पथ हैं जिन्हें आलंकारिक स्तंभ और तोरणों से सजाया गया है। स्तंभों के पादप्रदेश में पूर्ण-कुंभ,

शिखर पर उलटा कमल, उस के ऊपर तोरण हैं। तोरणों पर तीन फनवाले सर्प अंकित हुए हैं (चि.क्र.२५)।

इसी सर्प-लांछन के लिए यह गुम्फा सर्पगुम्फा के नाम से नामित है। सर्प तीर्थंकर पार्श्वनाथ का लांछन है। अतः अनुमान है कि यह गुम्फा तीर्थंकर पार्श्वनाथ के प्रति उत्सर्गीकृत गुम्फा है। गुम्फा के तोरण भी सूक्ष्म कारूकार्य से सुशोभित हैं। प्रथम तोरण पुष्पमाल्य द्वारा, द्वितीय और तृतीय तोरण पर सिंह और वृषभों के साथ नागरिकों की कौतुक क्रीड़ाएं चित्रित हुई हैं। चौथे तोरण में नीलोत्पल लिए उड़जाते राजहंसों की पंक्ति उत्कीर्णित होकर है। तोरण के आभ्यंतरीण अंशों के जो चित्र बनाए गयें हैं वे ऐतिहासिक और धार्मिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। प्रथम चित्र में एक चार दांतोंवाला पृथुलकाय हाथी दो हाथिनियों के बीच खड़ा है। उसकी भाव-मुद्रा गंभीर है। द्वितीय चित्र में एक राज-पुरुष चार अश्व-युक्त रथ पर चले जारहे हैं। दोनों ओर दों नारियां भी बैठी हुई हैं। राजा के ऊपर राजछत्र शोभित है। आकाश पर सूर्य, तारकाएं और चंद्रमा हैं जिनसे यही सूचना मिलती है कि राजपुरुष दिन रात रथ पर परिभ्रमण करते रहते हैं। रथ की गति के साथ ताल मिलाते से एक खर्वकाय मनुष्य दौड़ता सा दिखाया गया है जिसके बायें हाथ में पानपात्र है और दाहिने हाथ में उड़ती हुई पताका है। कई विद्वानों ने उन राजपुरुष को सूर्य देव माना है पर यह सिद्धान्त तर्क-संगत नहीं लगता। सूर्य के रथ में चार घोड़े नहीं होते न कि सूर्य के मस्तक पर राज-छत्र होता है। उस पर इस चित्र में आकाश पर सूर्य का वर्तुलाकार चित्र भी है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वह कोई महा मेघवाहन वंशज राजपुरुष हैं। तीसरे तोरण पर पद्म सर में खड़ी श्री या लक्ष्मी की मनुष्याकृति का चित्रण हुआ है। देवी लक्ष्मी के दोनों हाथों

में कमल है, दोनों ओर दो हाथियां हैं जो कमल पर खड़े हुए हैं और सूंड़ उठाए पानी वरसा रहे हैं। दोनों हाथियों के पीछे दो तोते भी हैं। चौथे तोरण पर वृक्ष देव की पूजा का दृश्य है। घेरे के अंदर पवित्र वृक्ष है, दोनों ओर राजा और रानी हैं। पूजा कर रहे हैं। उनके पास दो खर्वकाय पुरुष भी खड़े हुए हैं।

ये चित्र धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं। प्रथम चित्र में चार दांतोवाला हाथी है। जैन ग्रंथों से ज्ञात होता है कि महावीर की माता क्षत्राणी त्रिशला ने अपने चतुर्दश स्वप्नोंमें सब से पहले चार दांतोंवाला हाथी देखा था। उन्होंने अपने चौथे सपने में दो हाथियों के बीच बैठी श्री या लक्ष्मी को देखाथा। [शंसितचित्र में लक्ष्मी बैठी हुई नहीं हैं]। अत: यह भी एक जैन धर्म की पारंपरिकता है।

प्राचीन भारतीय कला क्षेत्र में घेरे में वृक्ष को बौद्ध धर्म का 'बोधिद्रुम' और जैन धर्म का 'कल्पवृक्ष' के प्रतीक माना गया है। उदयगिरि खण्ड़गिरि में खारवेळ के काल में इस वृक्ष चैत्य की पूजा को जैन धर्म के संकेत के रूप में ग्रहण करना ही अधिक संगत होगा। यहां यह उल्लेखनीय है कि, हस्ती, और श्री देवी हिंदू और बौद्ध धर्म के साथ भी जुड़ी हुई हैं।

इसका भी प्रमाण है कि अनंत गुम्फा में जैन धर्म के लांछनों की पूजा होती थी। गुम्फा की भीतरी दीवार पर सात सांकेतिक चित्र उत्कीर्णित हुए हैं (चि.क्र.२६)। मध्य भाग में नंदिपद है और दोनों पार्श्वों में क्रम से वृक्षचैत्य, श्रीवत्स और स्वस्तिक लांछन है। परवर्ती काल में वहां एक जैन तीर्थंकर का विग्रह बनाने का प्रयास भी हुआ था। पर वह संपूर्ण नहीं हो पाया। इसी गुम्फा के अभिलेख [परिशिष्ट-१ क्षुद्र अभिलेख -न.८] से ज्ञात होता है

कि इसका निर्माण ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में दोहद श्रमणों के लिये हुआ था। यहां के एक और अभिलेख अब दुष्पाठ्य हो गया है। सर जौन मार्शलके मतानुसार गुम्फा स्थापत्यकी दृष्टिसे यह गुम्फा संसारमें सर्व प्रथम है।

द्वितीय ततोवा गुम्फा की बायीं और थोड़ी सी दूरी पर तेंतुलि गुम्फा है जिससे लगभग संलग्न होकर है खण्डगिरि गुम्फा। शायद इस गुम्फा के समीप कोई तेंतुलि [ईमली] वृक्ष था जिससे यह तेंतुलि गुम्फा के नाम से नामित हुई है। कला की दृष्टि से ये दोनों गुम्फाएं सामान्य हैं। फिरभी तेंतुलि गुम्फा के एक पार्श्व में एक नारी की प्रतिमा है जिसके हाथों में कमल की कली है और अन्य पार्श्व मे क्रीड़ारत हाथी है। खण्डगिरि पहाड़ पर बनी सीढियां चढ़ते जाएं तो सब से पहले खण्डगिरि गुम्फा आएगी। खण्डगिरि पहाड़ के नाम के आधार पर इस गुम्फा का नाम खण्डगिरि पड़ा नहीं है, गुम्फा के सभी अंशों में दरार आ चुकी है जिससे वह खण्डों में बंटगया है। नामकरण का यह भी कारण हो सकता है। इस गुम्फा के ऊपर और नीचे दो प्रकोष्ठ हैं। ऊपर के प्रकोष्ठ की पीछे की दीवार पर ओड़िशा के आराध्य देव जगन्नाथ का एक चित्र रंगों में अंकित हो कर है।

खण्डगिरि गुम्फा की बायीं ओर चार गुम्फाएं हैं। वे हैं -ध्यानगुम्फा, नवमुनिगुम्फा, बारभूजीगुम्फा, और त्रिशुलगुम्फा।

ध्यानगुम्फा को ध्यानघर कहा जाता है। नाम से ही इसकी उपयोगिता के बारे में ज्ञात हो जाता है। यह एक साधारण और आडम्बरहीन प्रकोष्ठ है।

नवमुनि गुम्फा के अंदर नौ तीर्थंकरों की प्रतिमाएं खोदित होकर हैं। यही कारण है जिससे यह नवमुनि गुम्फा के नामसे नामित हुई है। इस नवमुनि गुम्फा के दो प्रकोष्ठ थे। सामने बरामदा था। सोमवंशी शासन काल में प्रकोष्ठों के बीच की दीवार और बरामदे की दीवार को तोड़ कर विस्तृत करके जैन-पूजापीठ के रूपमें बदला गया है। इसी गुम्फा के एक अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि यह कार्य सोमवंशी राजा उद्योत केशरी के समय [ई. १०५८] सम्पन्न हुआ था। [इस अभिलेख का पूर्णपाठ इसी ग्रंथ में सन्निवेशित किया गया है]। उसके पश्चात जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं बनायी गयी। तीर्थङ्करों में से सात पीछली दीवार में योगासन में उपविष्ट मुद्रा में हैं। वे हैं ऋषभनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनंदननाथ, वसुपूज्यनाथ, नेमिनाथ, और पार्श्वनाथ। सभी के मस्तक पर त्रिछत्र शोभित है और छत्र के ऊपर करताल बजाते दो हाथ दिखाई पड़ते हैं। प्रत्येक के दोनों पार्श्वोंमें चामरधारी सेवक खड़े हैं और नीचे शासन देवियों की प्रतिमाएं हैं। इनकी शासन देवियां क्रम स इस प्रकार हैं- चक्रेश्वरी, रोहिणी, प्रज्ञप्ति, बज्रश्रृंखला, गांधारी, पद्मावती और आम्रा। दाहिनी दीवार पर फिरसे ऋषभनाथ और पार्श्वनाथ की मूर्तियां उत्कीर्णित हुई हैं। इन दो मूर्तियों को मिलाकर "नवमुनी" नामसे गुम्फा का नामकरण हुआ है। बायीं दीवार पर चंद्रप्रभनाथ की एक छोटीसी प्रतिमा भी है। पर नवमुनियों में उनकी गिनती नहीं होती।

बारभुजी गुम्फा के बरामदे की दीवार की दोनों ओर बारह हार्थोवाली दो जैन शासनदेवियों की मूर्तियां उत्कीर्णित हुई हैं। उसी दिन से यह गुम्फा बारभुजी गुम्फा के नाम से प्रसिध्दि पायी है। दाहिनी ओर की देवी हैं रोहिणी। वे तीर्थंकर अजितनाथ की शासन देवी हैं। बायीं ओर आदिनाथ ऋषभ की शासनदेवी चक्रेश्वरी हैं। यह गुम्फा प्रशस्त और आयताकार है। उसमें चौबीस तीर्थङ्करों की

मूर्तियां हैं। सभी योगासन में हैं और पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में एक मूर्ति भी है। सभी तीर्थङ्करों के नीचे उनकी शासन देवियों की प्रतिमाएं भी उत्कीर्णित हुई हैं। पाठकों की जानकारी के लिये सभी तीर्थङ्कर और शासन देवियों के नाम प्रदत्त है।

	तीर्थङ्कर	वाहन	शासनदेवी
१.	ऋषभनाथ	वृषभ	चक्रेश्वरी
२.	अजितनाथ	हस्ती	रोहिणी
३.	सम्भवनाथ	अश्व	प्रज्ञप्ति
४.	अभिनंदननाथ	मर्कट	वज्रशृंखला
५.	सुमतिनाथ	सारस	पुरुषदत्ता
६.	पद्मप्रभ	पद्म	मनोवेगा
७.	सुपार्श्वनाथ	स्वस्तिक	काली
८.	चंद्रप्रभ	चंद्र	ज्वालामालिनी
९.	सुविधिनाथ [पुष्पदंत]	मगर	महाकाली
१०.	शीतलनाथ	श्रीवत्स	मानवी
११.	श्रेयांशनाथ	गंड़क	गौरी
१२.	वसुपूज्य	महिष	गांधारी
१३.	विमलनाथ	बराह	वैरोटी
१४.	अनंतनाथ	शैन	अनंतमती
१५.	धर्मनाथ	वज्र	मानसी
१६.	शांतिनाथ	हिरन	महामानसी
१७.	कुंथनाथ	छाग	जया [विजया]
१८.	अरनाथ	नंद्यावर्त	तारा
१९.	मल्लीनाथ	कलस	अपराजिता
२०.	मुनिसुव्रत	कच्छप	बहुरूपिणी

२१.	नमिनाथ	नीलपद्म	चामुण्डी
२२.	नेमिनाथ	शंख	आम्रा
२३.	पार्श्वनाथ	सर्प	पद्मावती
२४.	महावीर	सिंह	सिद्धायिका

पहले त्रिशूलगुम्फा का निर्माण भी जैन अर्हतों के आवास के रूपमें हुआ था। बादमें वही उपासना मंदिर बनी। यहां भी चौवीस तीर्थङ्करों की मूर्तियां हैं। ये मूर्तियां बारभूजी गुम्फा की मूर्तियों से अर्वाचीन लगती हैं। ये सभी दिगंबर मूर्तियों के रूप में परिकल्पित हैं और कला की दृष्टि से ई.पंद्रहवीं सदी के पहले की नहीं लगतीं। इस के नामकरण का कोई आधार ज्ञात नहीं है।

त्रिशूल गुम्फा से दक्षिणाभिमुख हो आगे बढ़जाने से पहले एक टूटी हुई गुम्फा दिखाई देगी। गुम्फा को काट कर समतल भी कर दिया गया है, फिरभी उसकी दीवार पर उत्कीर्णित ऋषभनाथ और आम्रा देवी की मूर्तियां हैं। आम्रा देवी फलों से भरपूर आम्र वृक्ष के नीचे त्रिभंग भंगिमा में खड़ी है। मूर्ति की बायीं ओर टुट गयी है पर मुख मंड़ल और शिरोभूषा अक्षुण्ण हैं। संभवत: आम्रा या अम्बिका के नामानुसार इस गुम्फा का नाम अम्बिकागुम्फा रखा गया है।

इसके बाद है ललाटेंदु केशरी गुम्फा। इस गुम्फा के पास और बरामदे के साथ पहाड़ के अनेकांश काटलिये गये हैं। गुम्फा के अंदर ऋषभनाथ और पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा विशिष्ट दो सुंदर मूर्तियां हैं। पर इस गुम्फा में सोमवंशी राजा उद्योत केशरी [ई १०४५] के राजत्व के पांचवे वर्ष का एक अभिलेख है। इसी अभिलेख से प्राप्त विवरणों के अनुसार कुमार पर्वत [खण्डगिरि] में

एक जीर्ण वापी थी, कुछेक प्राचीन टूटेहुए मंदिर थे जिनका संस्कार कर २४ तीर्थङ्करों की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की गयी थी। इस अभिलेख का पूर्ण पाठ इसी ग्रंथ में प्रदत्त है। इस गुम्फा के पास आकाशगंगा नाम से एक छोटा सा जल भंडार है तथा गुप्त गंगा, श्याम कुण्ड और राधा कुण्ड के नामसे तीन और जलाशय भी हैं, यह उल्लेखनीय है। इसी पहाड़ पर कई टुटे मंदिरों की आमलकी शिला और शिखर इत स्तत: पड़े हुए हैं जो अभिलेख वर्णित चौवीस तीर्थङ्करों के मंदिरों के भग्नावशेष से लगते हैं।

खण्डगिरि की अनेक कीर्तियों का नाश मनुष्यों के हाथों हुआ है, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है। यह धर्मध्वजी मनुष्य का असहिष्णु भाव का स्पष्ट निदर्शन है। जो भी अवशेष हैं वे हमारी उन्नत कला और सौंदर्यवोध के प्राचीन साक्षी हैं।

उदयगिरि खण्डगिरि की गुम्फाओं में अंकित चित्रों को देख कर श्रीमती देवला मित्र ने यथार्थ में कहा हैं:

''मूर्तियों के सम्मुख भाग के सौंदर्य को निखारने की निष्ठावान् चेष्टा और गठित मूर्तियों में स्वाभाविकता की देख कर कहीं भी शिल्पियों की सृजन अक्षमता या अपारगता नजर नहीं आती। वरन् हर दिशासे दक्षता ही दिखाई पड़ती है। मूर्तियों के परिपूर्ण मुख मंड़ल, त्रिचतुर्थांश या अर्ध खोदित होकर प्रदर्शित हुए हैं। मूर्तियों की भाव भंगिमाएं स्वाभाविक और स्वच्छंद हैं। गति उत्फुल्ल, सजीव और भावोद्योतक हैं। यंत्रणा, भयभीति, संकल्प, मानसिक उत्तेजना आदि अत्यंत स्वाभाविक और मूर्तियां सममित हैं। विभिन्न मूर्तियों में पारम्परिक संवंध है। गुहाओं के भित्ति-चित्रों से उत्कीर्णित मूर्तियों में शिल्प परिपक्वता अधिक स्पष्ट है। साथ ही आकृतियों के गठन, आदर्श की जीवंत अवतारण पूर्ण मात्रा में हो पायी है।

जैन कला में प्रतिकों का विशिष्ट महत्त्व है। प्राचीन जैन मूर्तियों, मंदिरों और शिलालेखोंमें इनका खुलकर प्रयोग किया जाता था। कुछ विद्वानोंका तो यह मतभी है कि प्रतीक योजना उस समयसे प्रचलित है, जब मूर्तिकलाका प्रारम्भ भी नहीं हुआ था। खारवेळ के अभिलेख तथा शिलांकन में भी नंदीपद, श्रीवत्स, वृक्षचैत्य, स्वस्तिक, वद्धमंगल आदि लांछन पाए जाते हैं। ये सब जैन धर्म के शुभ प्रतीक माने जाते हैं।

मोटे तौर पर यही कहा जा सकता है कि खण्डगिरि उदयगिरि में कला स्थापत्य के माध्यम से कलिंग के शिल्पियों ने अपनी धर्म-धारणा, सौंदर्य-वोध, ऐतिह्यपूर्ण संस्कृति और असीम वीरत्व की कालजयी कथा को अंकित कर गये हैं। इस पहाड़ के शिलालेख और शिलांकन हमारी जातीय संपदा हैं और इन्हें सुरक्षित रखना हमारा कर्तव्य बनता है।

---o---

परिशिष्ट-४

हाथीगुम्फा अभिलेख की लिपि और भाषा

ओड़िशा के प्रख्यात लिपिविद पद्मश्री डक्टर सत्यनारायण राजगुरु अपनी "ओड़िआ लिपिर क्रम विकाश" पुस्तक के आद्य पत्रे में ही कहते हैं: "ईसापूर्व तीसरी सदी में मौर्यवंशी राजा अशोक ने कलिंग पर विजय प्राप्ति के उपरांत ओड़िशा के धउलि और जउगड़ में शिला पर अपना धर्म अनुशासन उत्कीर्णित करवाया था। मेरी जानकारी के अनुसार वही इस देश की सर्व प्रथम लिपि है। इसे विद्वानवर्ग प्राचीन ब्राह्मी लिपि मानते हैं।" राजगुरूजी का यह मत पूर्ण रूपसे भ्रमात्मक है।

ओड़िशा के पश्चिमांचल अंतर्गत संबलपुर जिला के विक्रमखोल में एक प्रागैतिहासिक अभिलेख का आविष्कार हुआ था, जिसे सब से पहले श्री काशीप्रसाद जयस्वाल ने ई १९३३ में Ind. Ant. LXII में प्रकाशित कर एक तथ्य-गर्भक निबंध के माध्यम से उस पर आलोचना भी की थी। जयस्वालजी के मतानुसार "-The writing in not of pictographic nature but has reached syllabary or alphabetic stage." परवर्ती काल में विद्वानों ने भी इसे स्वीकारा है। महेंजोदाड़ो और हडप्पा में लिपि के आविष्कार के पश्चात प्राच्य और पाश्चात्य जगत के सभी विद्वान सहमत होते हैं कि ब्राह्मी लिपि के काफी पहले इस देश में एक और लिपि प्रचलित हो चुकी थी। पर वह ब्राह्मी की पूर्व लिपि आज भी अज्ञात और रहस्यमय है।

कर भाषा भी अज्ञात है, अतः पाठोद्धार भी संभव नहीं हो पाया है। चाहे जो भी हो ब्राह्मी को ओड़िशा की प्राचीनतम लिपि के रूप में प्रतिपादित करने का प्रयास ही हास्यास्पद है, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है।

लगभग एक सौ वर्षों तक अनेक विद्वानों ने खारवेळ के हाथीगुम्फा अभिलेख का पाठोद्धार के लिये हर दिशा से अथक श्रम किये हैं। इसके विवरण इसी ग्रंथ के द्वितीय परिच्छेद में है। अब अभिलेख की लिपि और भाषा के संक्षिप्त विवरण देना और उस पर विचार करना आवश्यक है।

महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय यह है कि भारतवर्ष में विभिन्न प्रांतों से जितने भी अशोक कालीन ब्राह्मी अभिलेख आविष्कृत हुए हैं, सब की लिपि और भाषा समान है। उसमें प्रादेशिक भेद की तलाश करना निरर्थक है। उसकी भाषा को मागधी प्राकृत और लिपि को अशोक कालीन ब्राह्मी (Ashokan Brahmi)के नाम से नामित किया गया है। अपने साम्राज्य का एकत्रीकरण के उद्देश्य से अशोक ने अपने अभिलेख में समान भाषा और लिपि का प्रयोग किया था।

स्वाधीन चेता सम्राट खारवेळ कलिंग की संतान थे। कलिंग की राजनैतिक परंपरा का पृष्ठपोषक तथा कलिंग संस्कृति के पूजक थे। अतः सबसे पहले उन्ही के अभिलेखों में कलिंग की लिपि और भाषा को स्थान प्राप्त हुआ। उन अभिलेखों की लिपि को परवर्ती ब्राह्मी लिपि कहना समीचीन होगा।

डॉ.राजगुरु ने अपनी "ओड़िशा लिपिर क्रम विकाश" पुस्तक में प्रदत्त प्रथम और द्वितीय चित्र फलकों में क्रमशः अशोक और

खारवेळ के समय की लिपियों को प्रदर्शित किया है। परंतु इन अभिलेखों का तुलनात्मक अध्ययन से यही पता लगता है कि प्रबागुरु जी के उस चित्र में प्रदर्शित अनेक वर्ण कल्पना-प्रसूत हैं। ये वर्ण उल्लिखित अभिलेखों में कहीं भी विद्यमान नहीं हैं। इस से लगता है, उनकी पुस्तक में प्रदर्शित खारवेळकालीन लिपि पाठकों को काफी विभ्रांत करती है।

हम यहां एक लिपि-पत्र तैयार करके अशोक और खारवेळकालीन वर्णमाला को दर्शाने का प्रयास कर रहे हैं। लिपि-पत्र के स्तंभ १ में अब प्रचलित नागरी लिपि, स्तंभ २ में अशोक-कालीन लिपि और स्तंभ ३ में खारवेळ की हाथीगुम्फा लिपि प्रदर्शित हुई हैं। [चित्र क्र.१८]

हाथीगुम्फा अभिलेख में पांच स्वरवर्ण हैं (initial Vowels)और २६ व्यंजन वर्ण हैं। डॉ. साहू के अनुसार व्यंजन वर्णों की संख्या २८ है, यह सही नहीं है। अभिलेख में एक ही वर्ण के कहीं दो या ततोधिक स्वरूप के वर्ण भी हैं। प्रथम अशोक-कालीन लिपि तो दूसरी उसी वर्ण की विकसित या परिवर्तित लिपि भी हो सकती है, जैसा कि हमने लिपि-पत्र में स्पष्ट कर दिया है। इसी से शायद भ्रम हुआ हो, उदाहरणों के जरिये लिपियों में परिवर्तन की सुचना से इस कथन की पुष्टी हो जाएगी।

"ख", "म" , और "व" , इन वर्णों के अशोक के समय की लिपियों में निम्नपार्श्व वृत्ताकार था जब कि खारवेळ के समय त्रिभुजाकार बना। उसी प्रकार "ल" और "ह" वर्णों के निम्न भाग कोणयुक्त हुआ है। अशोक-कालीन लिपि में कहीं 'ग" वर्ण का ऊर्ध्व भाग कोणयुक्त है जो खारवेळ-कालीन लिपि में नहीं

किया है। इसी ग्रंथ में वर्णित है कि उत्कल में वस्स [वत्स] और भञ (भंज) इन दो जाति के लोगों का नत्थिकवादी और अकिरिआ वादी होने के कारण पहले उन्होंने बुद्ध के द्वारा प्रचारित धर्म को स्वीकारा नहीं था। बरुआ महाशय ने "उक्कल वस्स भञ" में से प्रथम दो शब्दों को "उत्कल वर्ष" और 'भञ' को असभ्य भाषा के रूपमें व्युत्पन्न कर कदर्थ ही कर दिया है। ई. पांचवीं सदी में बौद्ध पण्डित बुद्धघोष ने अपने 'मनोरथ पुरणि' ग्रंथमें इसी उक्कल वस्स भञ को उत्कल के वत्स और भंज नामसे दो जातियों के रूपमें दर्शाये हैं। लगता है बरुआजी इन ग्रंथो के बारे में जानते नहीं हैं, जानते भी हों तो उपेक्षा से सही अर्थ जानने का प्रयास ही किया नहीं हो। पर यह तो जानना चाहिये कि कदर्थ ग्रहणीय नहीं होता और वह एक हास्यास्पद असफल तथा दायित्वहीन प्रयास ही कहलाता है! लिपिविद जयस्वाल और बेनर्जी ने भी हाथीगुम्फा शिलालेख की भाषा को एक उन्नत भाषा के रूप में स्वीकारा है। उनके मतानुसार यह भाषा शास्त्रीय पालि की अत्यंत समीपवर्त्तिनी भाषा है। अशोक-कालीन मागधी प्राकृत से यह भाषा भिन्न है बतलाते हुए स्पष्ट रूपमें इसकी स्वतंत्रता पर प्रकाश डाला है। पर इन्होंने भी बरुआ की भांति इसे कलिंग की भाषा के रूप में स्वीकार किया नहीं है। उनका कहना है कि खारवेळ ने इस अभिलेख लेखन के लिये गुजरात या महाराष्ट्र से किसी जैन साधु को लाया था। उन्होंने यह प्रतिपादित करने के लिये हाथीगुम्फा शिलालेख की १६-वीं पंक्ति के पाठ को आधार के रूप में ग्रहण किया था जिसे पूर्णतः गलत माना जा चुका है।

हाथीगुम्फा अभिलेख की भाषा को कतई तत्कालीन गुजरात की भाषा मानी नहीं जा सकती। तब गुजरात में पैशाची प्राकृत भाषा प्रचलित थी जब कि कलिंग ओड्र प्राकृत की भूमि थी।

भरत के नाट्यशास्त्र में [ई.१-२ सदी] इस ओड्रप्रकृत को "ओड्र विभाषा" के नाम से कथित किया गया है। प्राचीन संस्कृति की आलोचना के क्षेत्र में भरत की भूमिका गुरुत्वपूर्ण है। अतः उनका अभिमत प्रणिधानयोग्य है। उनके प्रणीत नाट्यशास्त्र में भारत वर्ष चार सांस्कृतिक क्षेत्रों में विभाजित है। वे हैं "आवंती, दाक्षिणात्य ओड्रमागधी और पांचाली":

"चतुर्विधा प्रवृत्तिश्च प्रोक्ता नाट्य प्रयोक्तिभिः।
आवंती दाक्षिणात्य च पांचाली चोड्रमागधी॥"

[१३-१७]

अन्यत्र इसी ग्रंथ में चार के बदले भरत मुनि ने पांच सांस्कृतिक क्षेत्रों का उल्लेख किया है:

"आवंती दाक्षिणात्य च तथाचैवोड्रमागधी।
पांचाली मध्यमा चेति विज्ञेयास्तु प्रवृत्तयः॥"

[६-२६]

भरत "प्रवृत्ति" की व्याख्या के रूप में "नाना देश वेश भाषाचार वार्ताः" कहते हैं। अर्थात अलग अलग क्षत्रों में वेश भूषण, भाषा, तौर तरीके आदि के सम्मिलित रूप को "प्रवृत्ति" कहा जाता है। उपरोक्त उद्धृति में "आवंति" पश्चिम भारतीय सस्कृति, "दाक्षिणात्य" दक्षिण में द्राविड़ संस्कृति, "मध्यमा" मध्य भारतीय संस्कृति, पांचाली" उत्तर भारतीय संस्कृति, तथा "ओड्र मागधी" पूर्व भारतीय संस्कृति का द्योतक है। ओड्रमागधी संस्कृति की सीमा को भरत ने सुदूर-विस्तारण बताया है। उत्तर में नेपाल से दक्षिण में कलिंग, पूर्व में ब्रह्मदेश से पश्चिम में वत्सराज तक यह सांस्कृतिक क्षेत्र विस्तृत होकर था।

अब इस प्रश्न का उठाया जाना उचित लगता है कि ओड्र प्राकृत की भांति एक उन्नत भाषा को भरत ने क्यों ओड्र विभाषा के रूप में अभिहित किया है! इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि द्रामिळ या द्राविड़ भाषा को भी उन्होंने विभाषा कहा है यद्यपि यह भाषा भी उन्नत और प्राचीन है। अतः "विभाषा" के कारण "अनुन्नत भाषा" कहा नहीं जा सकता। क्यों कि जो क्षेत्र आर्य अध्युषित होकर नहीं थे उन क्षेत्रों की भाषा को नाट्यशास्त्र में "विभाषा" कहा गया है।

हाथीगुम्फा अभिलेख से उस समय के लेखन, रूप, गणना, आचरण विधि, गांधर्व वेद आदि की शिक्षा कलिंग में प्रचलित थी, इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। इसी ग्रंथ में हम उनके विवरण दे चुके हैं। खारवेळ के खण्डगिरि -उदयगिरि अभिलेख और शिलांकन आज भी कलिंग की सुउन्नत ऐतिह्यमय सांस्कृतिक परंपरा का श्रेष्ठ निदर्शन के रूप में विद्यमान है। अतः खारवेळ-कालीन कलिंग को असभ्य और अशिक्षित बतलाने का प्रयास अशोभनीय होगा तथा उसे इतिहास को विभ्रांत करने का शैक्षिक अपराध ही कहा जाएगा। खारवेळ के हाथीगुम्फा शिलालेख की भाषा कलिंग की उन्नत निजस्व भाषा है और उसका लेखन कार्य कलिंग-संतान के द्वारा ही संपन्न हुआ था, इस कथन के खण्डन के लिये किसी भी ऐतिहासिक तर्क प्रस्तुत किया नहीं जा सकता।

हाथीगुम्फा अभिलेख की भाषा की अनेक विशेषताएं हैं। विद्वानों ने इसमें अंतर्निहित काव्यिक तथा प्रभावशाली गद्यशैली के कारण समग्र भारतवर्ष के प्राचीन अभिलेखों में विशिष्ट स्थान दिया है। निचे प्रयोग किये गये कुछेक प्राकृत शब्द तथा संस्कृत प्रतिशब्द पाठकों की जानकारी के लिये दे रहे हैं:

प्राकृत	संस्कृत
बहसतिमित	बृहस्पति मित्र
राजगहं	राजगृह
इसिनं	ऋषिनं
कपरूख	कल्पवृक्ष
रथिक	राष्ट्रिक
सिरि	श्री
दुतिये	द्वितीये
ततिये	तृतीये
वेडुरिय	वैदुर्य
योवराजं	यौवराज्यं
मुरिय	मौर्य
तुरिय	तौर्य
वसे	वर्षे
उवासग	उपासक
विजाधर	विद्याधर
सवविजा	सर्वविद्या
पतिपादयति	प्रतिपादयति
गोरधागिरि	गोरथगिरि
रध	रथ
उतरापध	उत्तरापथ
हथि	हस्ती
सातकनि	सातकर्णी
सेययो	शैशव

हाथीगुम्फा अभिलेख में "ऋ", "र" और "रेफ" की मात्राओं का प्रयोग हुए नहीं हैं। केवल "स" का ही प्रयोग है। जबकि

अशोक के अभिलेखों में "श", "स" और "ष" तीनों हैं। इनके अतिरक्त हाथीगुम्फा अभिलेख में "ञ","ढ" और "फ" भी नहीं हैं। सर्वत्र "क्ष" स्थान पर "ख" का प्रयोग हुआ है। यद्यपि "ण" और "न", दोनों वर्ण हैं, फिर भी अनेकत्र "ण" के स्थान पर "न" का प्रयोग देखा जाता है। अनेकत्र "ध" ने "थ" का स्थान ग्रहण किया है जबकि अभिलेख में कई जगह "थ" का भी उल्लेख है। सावलील उच्चारण के लिये सारे अभिलेख में युक्त व्यंजन वर्णों का मानो परिहार हुआ हो। मात्र दो ही शब्द हैं- "कन्ह" "और बाम्हण" जिनमें 'ह' के साथ 'न' और 'म' को संयोजित किया गया है। अनुस्वार का भरपूर प्रयोग है, पर विसर्ग कहीं भी नहीं है।

हाथीगुम्फा अभिलेखको केवल भाषा और साहित्यिक मूल्य के लिये भारतवर्ष में प्रमुखता या प्रसिद्धि मिली नहीं है, इसे खारवेळ के राजत्व के प्रथम से लेकर तेरहवें वर्ष तक के धारा विवरणों के साथ सभी उन्नयन कार्यों के, यहां तक कि राष्ट्रीय विकास के लिये व्यय के विवरण भी कहा जाएगा प्रदत्त है, और उस जैसा एक समसामयिक अभिलेख भारत भर में दुर्लभ है। एक आदर्श महाराजा के दक्ष शासन में कलिंग इतिहास का एक विशेष कालखण्ड को उद्घोषित करनेवाला यह अभिलेख अप्रतिम है।

—o—

सन्दर्भ ग्रन्थ - सूची

Dr. H.K. Mahatab- History of Orissa
Dr. N.K. Sahu - History of Orissa, Vol. I (U.U.)
Dr. N.K. Sahu - Kharavela
Dr. N.K. Sahu - Buddhism in Orissa
Dr. K.C.Panigrahi- History of Orissa
Paramananda Acharya- Studies in Orissan History, Archaeology and Archives.
R.D Benarjee - History of Orissa, Vol.I
B.M Barua - Old Brahmi Inscriptions in Udayagiri and Khandagiri Caves.
Buhler- Indian Palaeography
A.H. Dani- Indian Palaeography.
G H. Ojha- Indian Palaeography (Hindi)
Cunningham- Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol.I,
Hiralal- Inscriptions of C.P. and Berar.
A.P Sastri - Early Inscriptions of Bihar and Orissa.
B.C. Mazumdar - Orissa in the Making.
Oldenburg- The Vinaya Pitaka- Vol.I
Debla Mitra - Udayagiri and Khandagari
Dr.K C. Panigrahi- Archaeological Remains of Bhubaneswar.
J. Prinsep- Essays on Indian Antiquities.
D.C. Sircar- Select Inscription- Vol-I
P.L. Gupta- Coins
Dr. H.C. Das - Cultural Development in Orissa.
Dr. R.P.Mohapatra - Udayagiri and Khandagiri Caves
Sahu, Mishra and Sahu - History of Orissa.
S.N. Agrawal - Orissan Palaeography.

Epigraphia Indica.

Indian Historical Quarterly

Journal of Andhara Historical Research Society.

Indian Antiquary.

Journal of the Asiatic Society of Bengal.

Journal of the Bihar and Orissa Research Society.

Journal of the Kalinga Historical Research Society.

Orissa Historical Research Journal.

Proceedings of the Indian History Congress.

हिन्दी

बलभद्र जैन- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ

काशीप्रसाद जयस्वाल- खारवेल के शिलालेख का विवरन

साहित्य संगम (सं.) -उत्कल दर्शन

महाभारत, रामायण, (गीता प्रेस)

ओडिआ

डॉ. नवीन कुमार साहू- ओडिआ जातिर इतिहास

केदारनाथ महापात्र -श्रीखारवेळ

डॉ सत्यनारायण राजगुरु- ओडिआ लिपिर क्रम विकाश

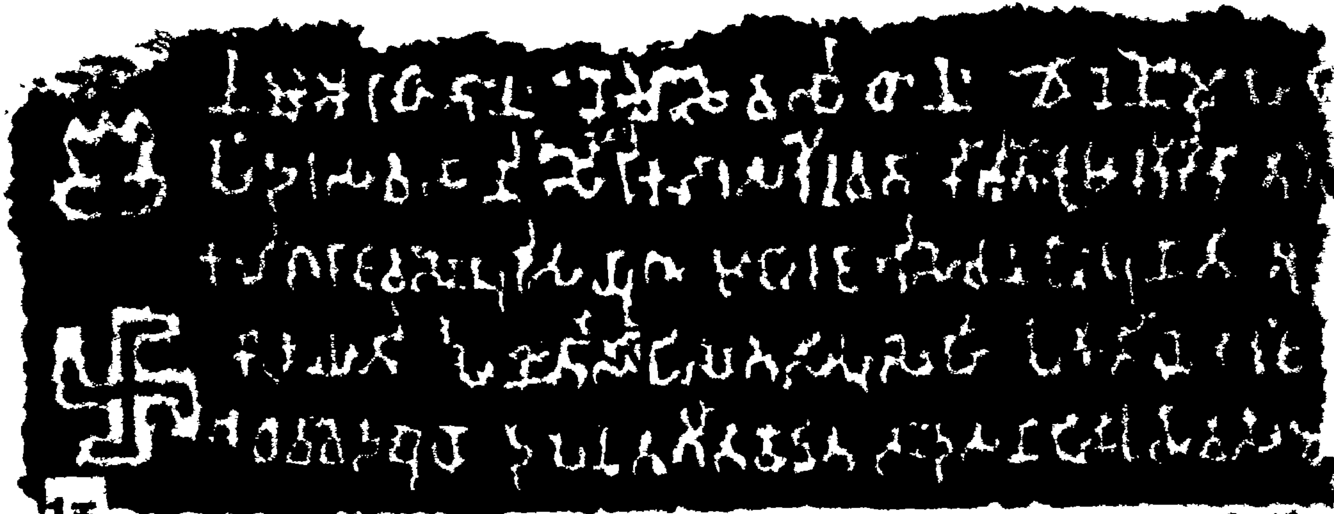
डॉ सत्यनारायण राजगुरु- ओडिशा इतिहास

डॉ. यज्ञ कुमार साहु - ओडिशा इतिहास

डॉ. धिरेन्द्र नाथ पट्नायक - सं- अभिनय दर्पण

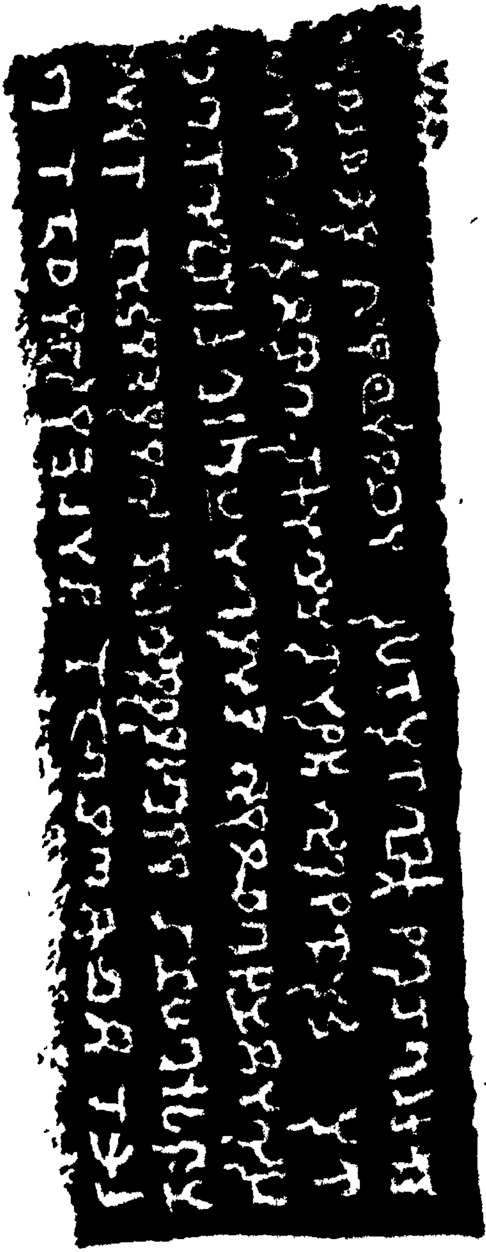
ओडिशा साहित्य अकादमी- नाट्य शास्त्र।

—o—



1क

SNA







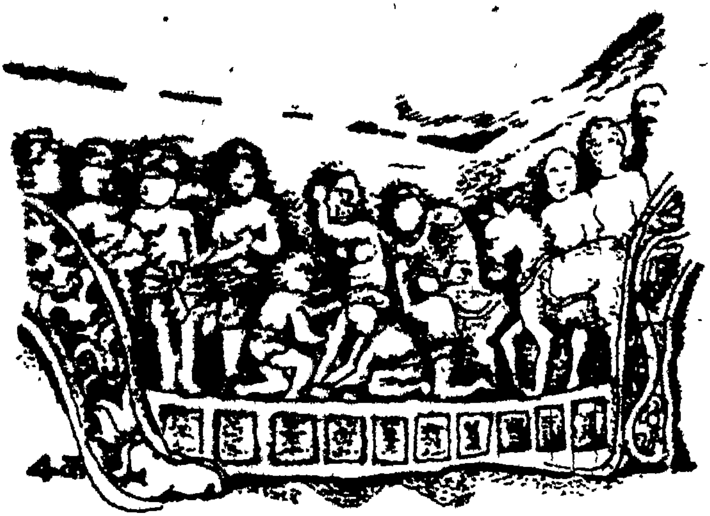
2ग



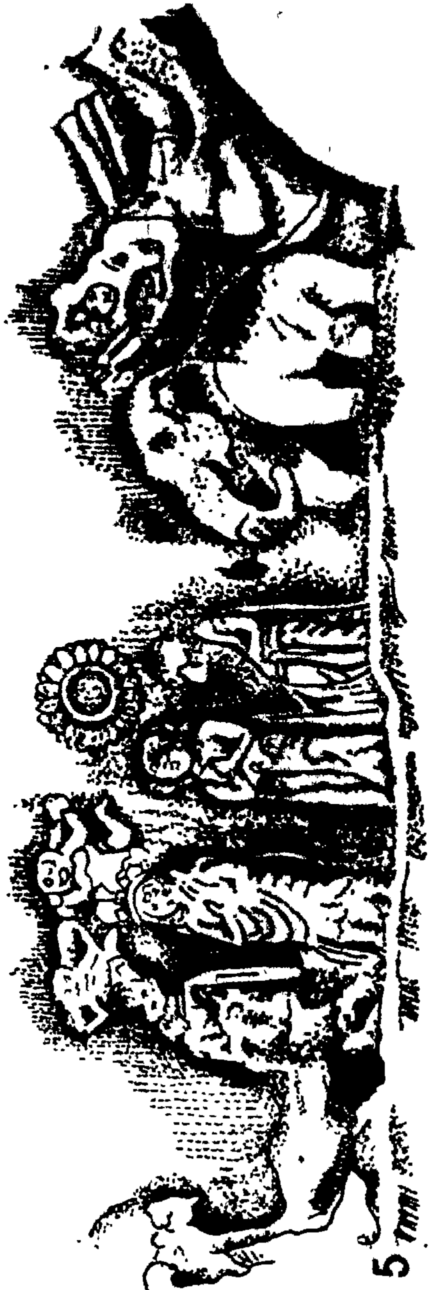
2घ

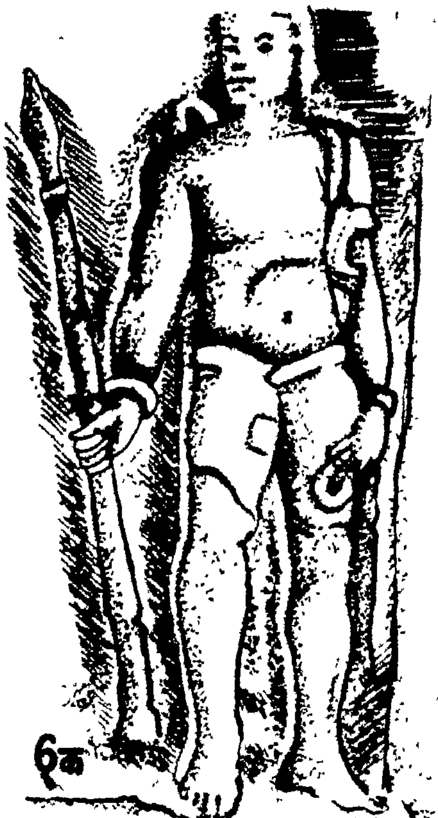

खारवेल का दिग्विजय पथ
तक्षशिला
गंगा
मगध
पाटलीपुत्र
राजगृह
नर्मदा
महानदी
नासिक
रथिक
असक
कलिंग नगरी
अमरावती
कांची
मदुरा
सिंहल
संकेत
नदियाँ
राजधानी
दिग्विजय पथ

3






5 mm



6क



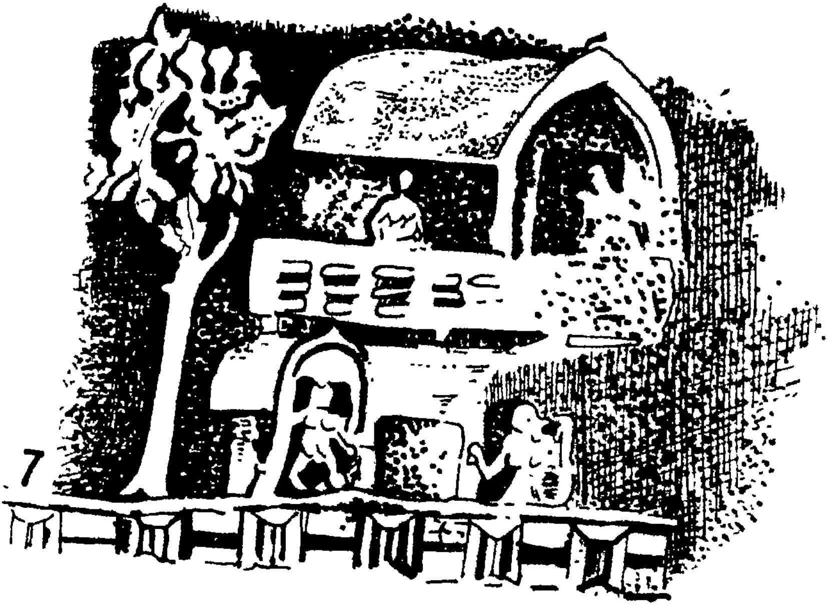
6ख



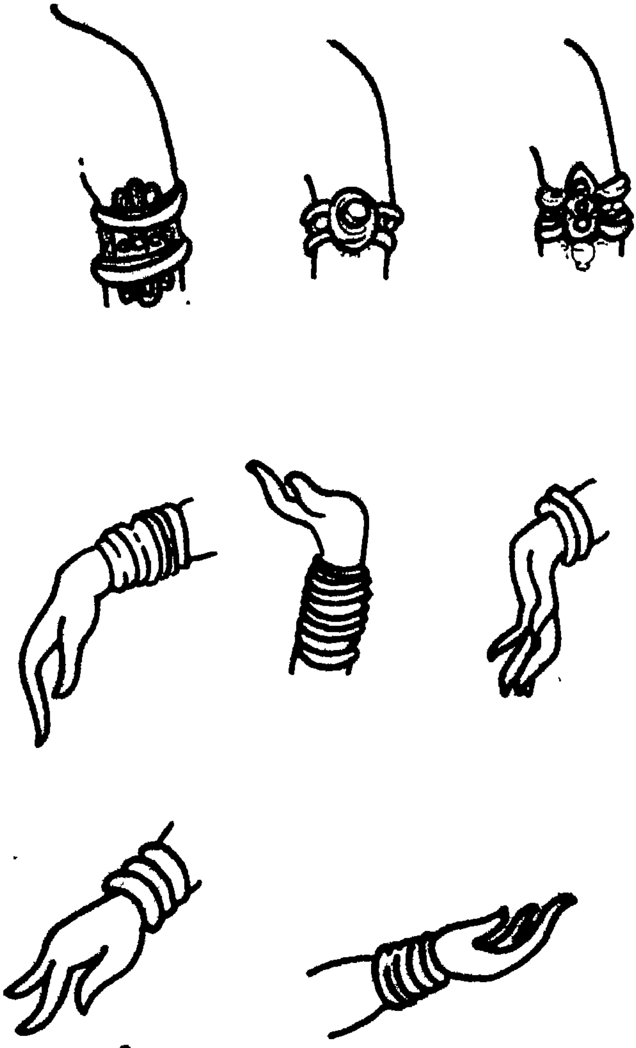
6ग



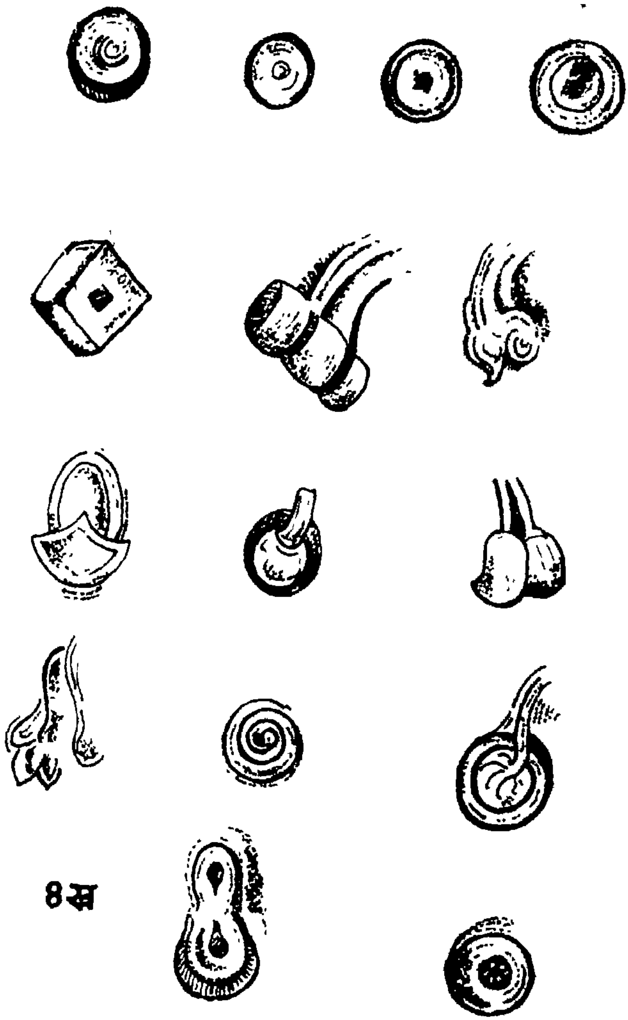
6घ



7



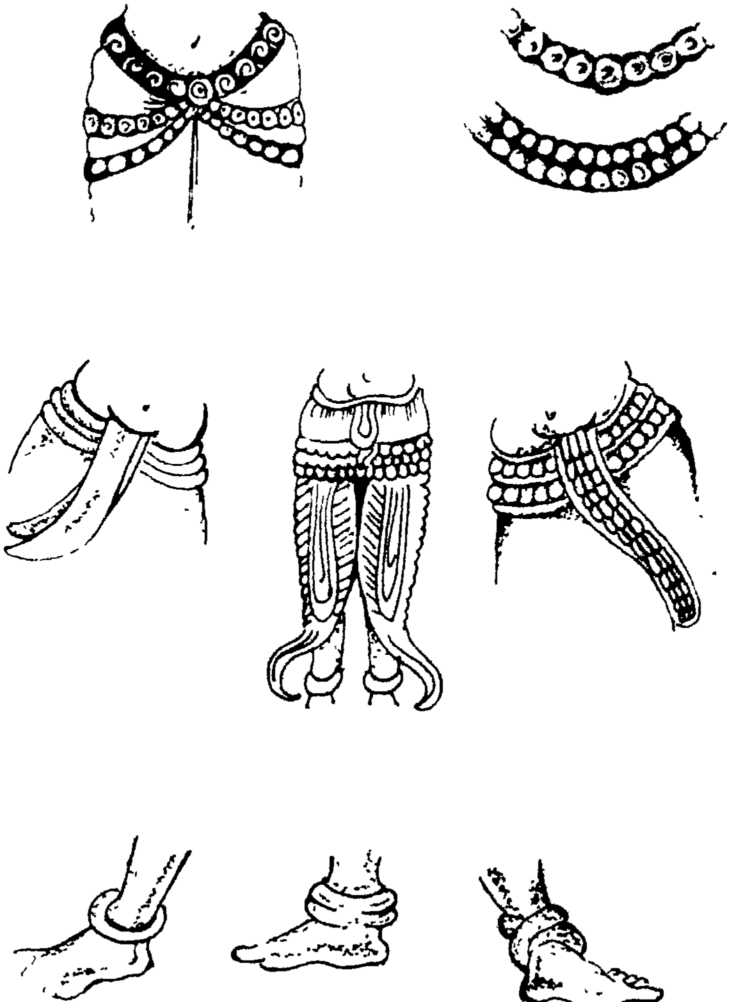
8 क



४ ख



४ ग



8घ



9क



9 ख



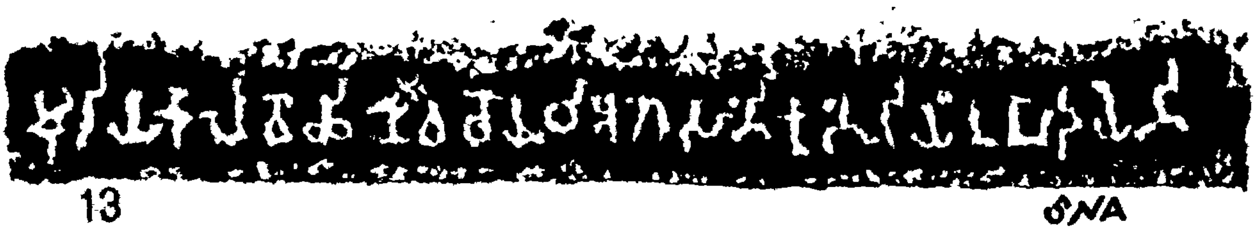
10



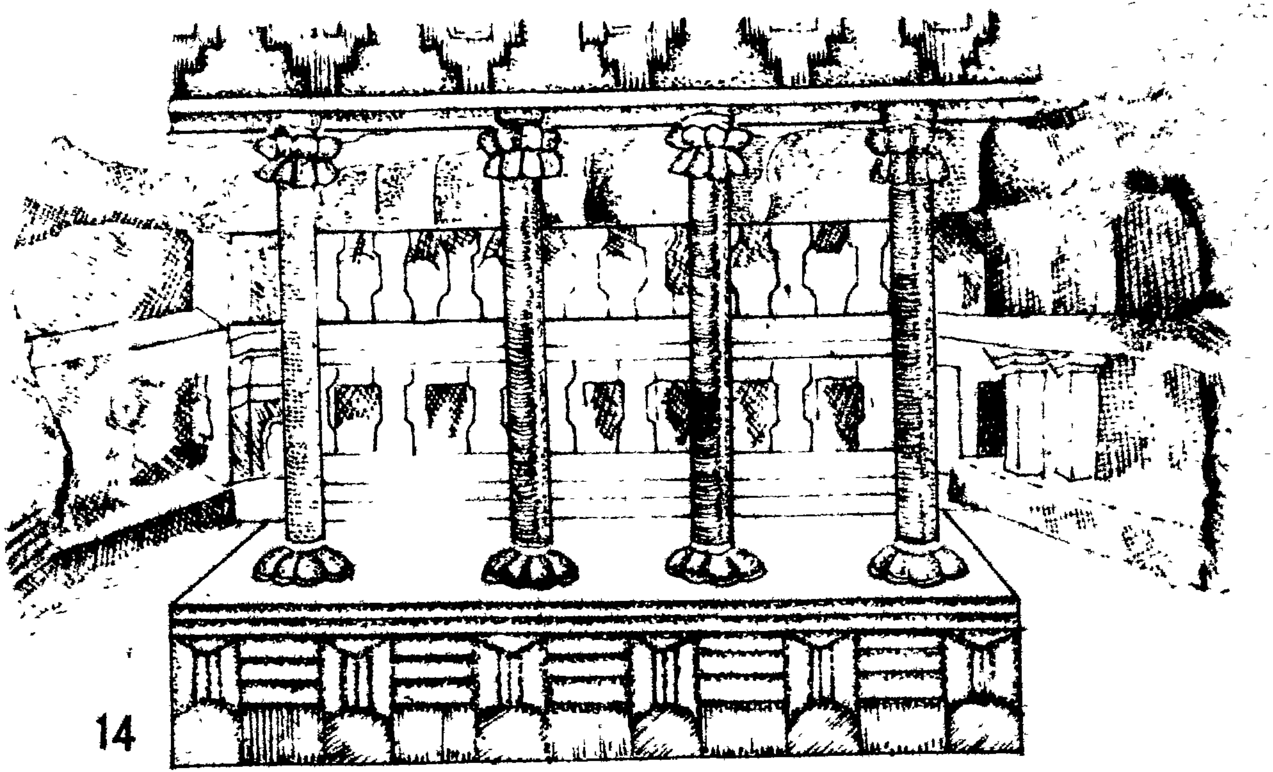
11



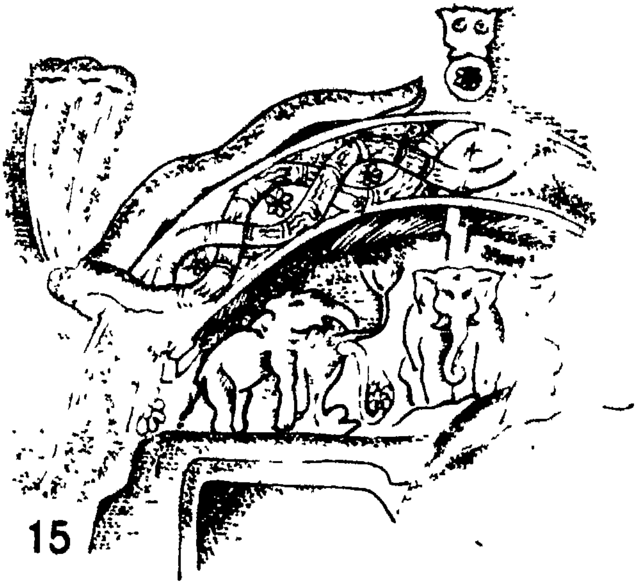
12



13

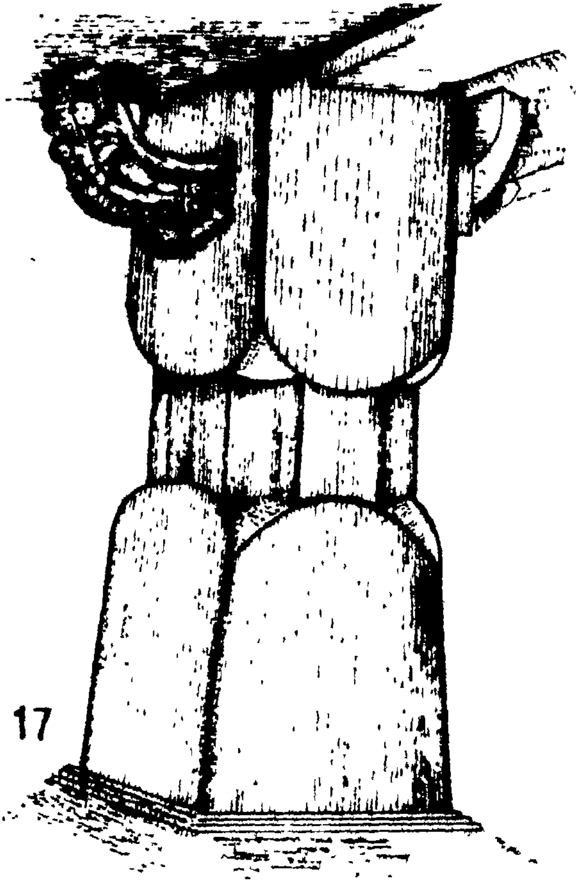


14

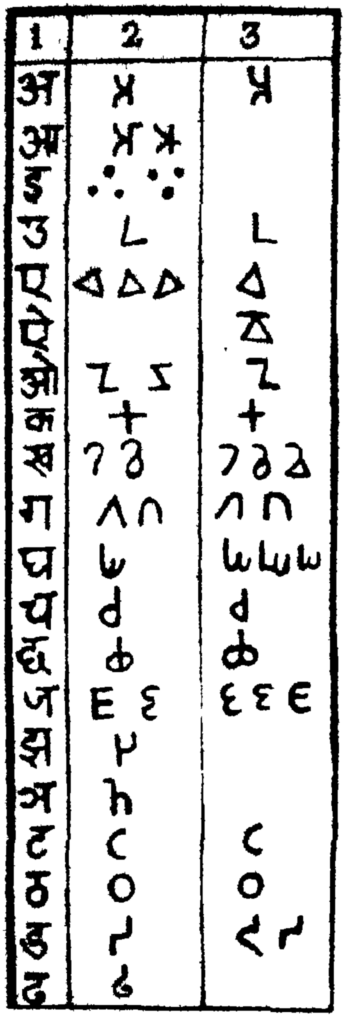


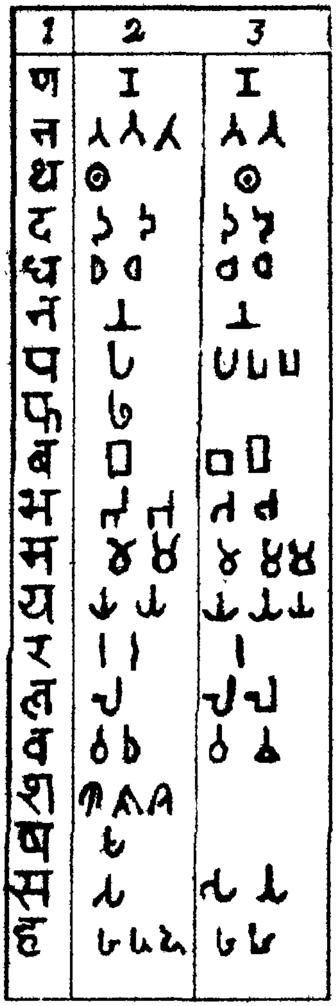
15

16

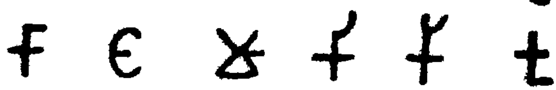


17

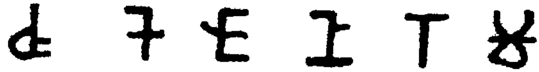

1
2
3
अ
आ
इ
उ
ए
ऐ
ओ
क
ख
ग
घ
च
छ
ज
झ
ञ
ट
ठ
ड
ढ


1
2
3
ण
त
थ
द
ध
न
प
फ
ब
भ
म
य
र
ल
व
श
ष
स
ह

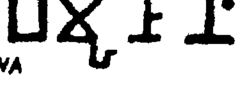
का टा मा कि की कु



चू के जे नो रो मो



बम्हणानं

19 

SNA